निवेदन

इस संग्रहकी सैर करके मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। प्राय सभी श्लोक अनोखे हैं और अनेक विषयोंके हैं। शृङ्गाररसकी उक्तियां अनोखी होनेपर भी उद्वेगजनक नहीं। भावार्थ लिख देनेसे केवल हिन्दी जाननेवाले भी इससे आनन्दप्राप्ति कर सकेंगे। श्लोक कण्ठ करने लायक हैं। लोगोंकी रुचि संस्कृतकी ओर बढ़ रही है। इस दशामें, आशा है, सभी सर्वसाधारण जन इसे बहुत पसन्द करेंगे। यह मेरी सच्ची राय है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

गये अपने हृदय को ढूंढ रहे हैं! लक्ष्मी ने उनके (हरि के) हृदय को चुरा कर अपने ही हृदयमें कहीं रक्खा होगा, उसे ढूंढनेके लिए मानों वह वहां पर हाथ से टटोल रहे हैं।

मक्खन चुरा कर बालक कृष्ण किसी अन्धेरे स्थानमें छिपनेके लिए भागे जा रहे हैं। उन्हें संबोधन करके एक भक्त कहता है :—

चौरसारमपहृत्य शंकया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मानसे मम नितान्ततामसे नन्दनन्दन कथं न लीयसे ॥३॥

३ भावार्थः—हे नन्दनन्दन! मक्खन चुराकर डर के मारे यदि आप कहीं भाग रहे हैं और किसी अन्धेरे स्थानमें छिपना चाहते हैं, तो मेरे उस मनमें आकर क्यों नहीं छिप जाते जिस में मोह और अज्ञानरूपी अन्धकार भरा हुआ है। ऐसा अन्धकारमय स्थान आपको छिपनेके लिए और कहां मिलेगा?

एक विष्णु का अनन्य भक्त विष्णु को संबोधन करके कहता है :—

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा,
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसः मनसोऽस्ति दैन्यं,
तन्मे गृहाण पदपंकजमर्पितं ते॥ ४॥

४ भावार्थः—समुद्र, जिसमें रत्न भरे हुए हैं, आपका निवासस्थान है, साक्षात् लक्ष्मी आपकी पत्नी है, और आप स्वयं तीनों लोकोंके स्वामी हैं, भला मैं आपको क्या दे सकता हूं! पर हां, एक चीज़ आप के पास नहीं है और उसे मैं आपको

क्या हम गज से भी और गोवर्द्धन पर्वत से भी भारी हैं कि हमारा अब भी आप उद्धार नहीं करते ?

एक भक्त महादेव को संबोधन करके कहता है:—

पृष्ठे भवन्तमयमुद्वहते कदाचिदेता-
वता यदि तवैति दयास्पदत्वम् ।
स्वामिन्नहं तु हृदयेऽन्वहमुद्वहामि त्वा
मित्यतःकथमहो न तवानुकम्प्यः ॥७॥

७ भावार्थ :—भगवन् ! यह नान्दी बैल आपको कभी कभी अपनी पीठ पर सवार कराकर इधर उधर ले जाता है, इतनेहीसे यह आपकी परम कृपा का पात्र बना हुआ है। नाथ ! हम तो प्रतिदिन और प्रतिक्षण आपको अपने हृदयमें लिये फिरते हैं, पर आप हमें अपनी कृपा का पात्र क्यों नहीं बनाते ?

कोई बहुत ही कामी विष्णु की भक्ति किया चाहता है पर मन उसका विष्णुके चरणोंमें नहीं रमता, तब विष्णु का भक्त कामदेव को संबोधन करके कहता है :—

मदन ! परिहर स्थितिं मदीये मनसि मुकुन्दपदारविन्दधाम्नि ।
हरनयनकृशानुना कृशोऽसि स्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारेः ॥ ८॥

८ भावार्थः—कामदेव ! तुम अब मेरे मन से हट जाओ, उसमें अब विष्णु भगवान के चरणारविन्दों का वास होने लगा है। तुम तो पहिले ही से महादेव के तीसरे नेत्र की अग्निसे दग्ध होकर दुर्बल हो रहे हो, अभी तुम्हें विष्णु भगवानके चक्र की खबर नहीं है।

एक भक्त मुक्त हो जाने पर, महादेवको संबोधन करके कहताहै :—

वपुः प्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा
पुरारे! न प्रायः क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान्।
नमन् मुक्तः संप्रत्यहमतनुरग्रेऽप्यनतिभाक्
महेश! क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि ॥९॥

९ भावार्थः—हे महेश! इस जन्ममें शरीर धारण करनेसे मैं अनुमान करता हूं कि मैंने पूर्वजन्ममें आपको कभी भी प्रणाम नहीं किया। यदि मैंने पहले जन्ममें आपको प्रणाम किया होता तो मेरा यह जन्म कभी न होता और न मैं फिर शरीरधारण करता। इस जन्म में मैं आपको अब प्रणाम करता हू, जिससे मैं मुक्त हो जाऊंगा और मुझे पुनः शरीरधारण न करना पड़ेगा। अतएव मैं आपको भविष्यमें भी प्रणाम न करूंगा? क्योंकि बिना शरीर के मैं आपको प्रणाम कैसे कर सकूंगा। इसलिए हे भगवन्! मेरे इन दोनों, पूर्वकालके और उत्तरकालके अपराधों को क्षमा कीजिए।

संयोग और वियोग।

—:o:—

प्रियतम के वियोग में कोई स्त्री अश्रुधारा बहाकर अपने स्तनों को भिगो रही है। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है:—

अंगानि मे दहतु कान्तवियोगवह्नि-
संरक्ष्यतां प्रियतमो हृदि वर्तते यः।
इत्याशया भ्रमिमुखी गलदश्रुवारि-
धाराभिरुच्चमभिषिंचति हृत्प्रदेशम् ॥१०॥

१० भावार्थः—विरह की आग मेरे सारे शरीर को चाहे भस्म कर दे, किन्तु मेरे हृदय में सदा निवास करने वाले मेरे प्रियतम को इस आग की आंच भी न लगने पावे। बस, इस आशय से यह चन्द्रमुखी लगातार अश्रु धारा बहाकर अपने वियोगतप्त हृदयस्थान को सींच रही है। उसकी अश्रुधारा आंखोंसे बहकर छाती पर लगातार गिर रही है। देखिए, इतनी सी बात को कविने कैसे अच्छे ढंगसे कहा है।

गोवर्धन सप्तशतीका यह श्लोक सच्चे प्रेमके विषयमें है:—

> अन्यमुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव परिहासः।
> इतरेन्धनजन्मा यो धूमः सोऽगुरुभवो धूपः॥११॥

११ भावार्थः—जो बात दूसरे के मुखसे कही गई है वह गाली गिनी जाती है, पर, वही बात अपने प्रियतमके मुखसे कही जाय तो केवल हँसी मज़ाक समझी जाती है। सच है, सामान्य काष्ठके जलनेसे निकला हुआ जो धूआं "धूम" के नामसे पुकारा जाता है, वही यदि अगुर, के जलनेसे निकले तो "धूप" कहलाता है। प्रेम की विचित्र गति है!

प्रियतमके परदेश जानेके समय पत्नी रोने लगी। इस पर पति कहता है:—

> प्रस्थानयात्रसमये कुरु मंगलानि
> किं रोदिषि प्रियतमे? वद कारणं मे।
> हे प्राणनाथ! विरहानलतीव्रताप-
> धूमेन वारि गलितं मम लोचनाभ्याम्॥१२॥

१२ भावार्थः—प्रियतमे! मेरे प्रस्थान करनेके समय तुम्हें

मंगलाचार करना चाहिए, सो न करके तुम रो रही हो। इस का कारण तो मुझे बतलाओ। इस पर यह उत्तर देती है,—हे प्राणनाथ! तुम्हारे वियोगरूपी अग्नि से उठा हुआ धूआं मेरी आंखों में लगा, उसी से मेरी आंखों से आंसू टपकने लगे। और कोई कारण नहीं है।

किसी के चन्द्रमा को भी शर्माने वाले मुख तथा कमल के समान चरणों की तारीफ़ में कवि कहता है:—

> उन्मेषं यो मम न सहते जातिवैरी निशाया-
>
> मिन्दोरिन्दीवरदलदृशा तस्य सौन्दर्यदर्पः।
>
> नीतः शान्ति प्रसभमनया वक्त्रकान्त्येति हर्षा-
>
> ल्लग्ना मन्ये ललिततनु ! ते पादयोः पद्मलक्ष्मीः ॥१३॥

१३ भावार्थः—"मेरा स्वभाविक वैरी चन्द्रमा रातमें मेरे विकाश और अभ्युदयको नहीं सह सकता। उसी चन्द्रमाके सौन्दर्य दर्प को इस कमलनयनी ने अपने मुख की कान्ति से चूर कर दिया"। बस इसी खुशीमें अपनी कृतज्ञता प्रकाश करनेके लिए हे कोमलांगी! कमल की शोभा तुम्हारे पैरों में आकर लग गई।

यदि स्वयं कोई अपने वैरी से न जीत सके और दूसरा कोई उस वैरी को हरा दे तो वह बहुत ही खुश होता है और हरानेवालेके चरणों पर अपने सिर को रख कर अपनी कृतज्ञता प्रकाश करता है। इसी तरह कमलने उस स्त्रीके मुखसे चन्द्रमा को पराजित देखकर अपनी कृतज्ञता प्रकाश करनेके लिए अपनी कान्ति उसके चरणों को समर्पित कर दी। उसके मुख और चरण चन्द्रमा और कमल से भी

सुन्दर हैं, सिर्फ इस बात को कविने कितनी खूबी के साथ वर्णन किया है।

कोई प्रेमी अपनी प्रियतमा का कुशलमंगल एक दूतीसे पूछ रहा है। वह दूती अभी अभी उसकी प्यारी का संदेशा ले कर आई है। इस श्लोक में इन्हीं दोनों की बातचीत है। श्लोक बहुत ही भाव पूर्ण और चुभता हुआ है:—

कुशलं तस्या ? जीवति, तत्कुशलं पृच्छामि, जीवतीत्युक्तम्।
पुनरपि तदेव कथयसि, मृता नु कथयामि या श्वसिति ? ॥१४॥

१४ भावार्थः—उसकी कुशल तो है ? हां जीती है ! अरे हम उसकी कुशल पूछते हैं ? कह तो दिया जीती है ! फिर फिर उसी बात को कहती जाती हो ? तो क्या मैं कह दूं कि वह मर गई जब कि उसमें सांस बाकी है ?

"किसी तरहसे आपके वियोगमें जी रही है" इस इतनी बात को कविने कैसे अच्छे ढंगसे कहा है !

घने अन्धकार में अपने यारके पास जाती हुई किसी अभिसारिका नायिकासे कोई प्रश्नोत्तर करता है:—

क प्रस्थितासि करभोरु ! घने निशीथे ?
प्राणाधिको वसति यत्र जनः प्रियो मे।
एकाकिनी वद कथं न बिभेषि बाले ?
नन्वस्ति पुङ्खितशरो मदनः सहाय ॥ १५ ॥

१५ भावार्थ:—सुन्दरि! ऐसे घने अन्धकार में कहां जा रही हो ? जहां मेरा प्राणसे भी प्यारा प्रियतम रहता है वहीं जा रही

हूं। बाले ! अकेली जाते हुए तुम्हें डर नहीं लगता ? अकेली कहां हूं, धनुषबाण लिए कामदेव जो मेरे साथ साथ जा रहा है। ~

निम्न लिखित श्लोक के सबन्ध में मयूर और बाण के विषय में एक कथानक प्रचलित है। ऐसा कहा जाता है कि बाण मयूर कविके बहनोई और बड़े मित्र थे। किसी दिन मयूर कवि रातके पिछले पहर जाग उठे और उन्होंने कई श्लोक बना डाले। उन्हें बहुत रसीले और मनोहर समझ मारे उत्सुकताके वे अपने मित्र बाण कवि को सुनानेके लिए उनके गृह-द्वार पर पहुंचे। बाण कवि ठीक उसी समय अपनी प्यारी पत्नी, मयूर कवि की बहिन को, जो मान कर बैठी थी, प्रसन्न करते हुए, यह श्लोक रच कर सुना रहे थे। तीन चरण सुना कर जबतक वे चतुर्थ चरणके शब्द सोच रहे थे तबतक मयूर कवि वहां जा पहुंचे और स्वयं चतुर्थ चरण की पूर्त्ति करते हुए बोले:—"स्तनप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्"। यह सुनतेही बाण कवि प्रसन्नता से भरे बाहर निकल आये और मयूरसे भेंट की। बाण की स्त्री ने अपनी क्रीडा में ऐसा रंगभंग देख, भाईको शाप दिया कि वह कोढ़ी हो जाय। मयूर कोढ़ी हो गये और सूर्यशतक बनाने पर उस रोगसे छुटकारा पाया। सूर्यशतक रचकर मयूरने अपना कोढ़ दूर किया ऐसा काव्य प्रकाशमें भी लिखा मिलता है।

गतप्राया रात्रिः, कृशतनु शशी शीर्यत इव,
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्तः कोपस्तदपि न जहासि क्रुधामहो,
स्तनप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्॥ १६॥

१६ भावार्थ :—रात अब बीत सी गई है। चन्द्रमा भी अब प्रकाशहीन होकर अस्त होनेको है। यह दीपक भी जो रात भर जागा है, अब नीन्दमें आकर औंघाई ले रहा है। पतिके प्रणाम करनेसे क्रोध अन्त हो जाना चाहिए, पर हमारे प्रणाम करने पर भी क्रोध नहीं छोड़ती हो। मालूम होता है कठोर स्तनोंके पास रहते रहते तुम्हारा हृदय भी कठोर हो गया है।

एक दूती किसी विरहविधुरा स्त्री की मरणासन्न दशा का वर्णन उसके प्रेमपात्र से करती हुई कहती है:—

> तव विरहविधुरबाला सद्य: प्राणान् विमुक्तवती।
> दुर्लभमीदृशमंगं मत्वा न ते पुनस्तामजहु: ॥ १७ ॥

१७ भावार्थ:—तुम्हारे विरहमें व्याकुल होकर उस बालाने तुरन्त ही अपने प्राणों को छोड़ दिया। किन्तु प्राणोंने यह सोचा कि ऐसे कोमल अंग रहने को कहा मिलेंगे इसलिए उन्होंने उसे न छोड़ा। "वह किसी तरह अब तक जीवित है और विरह के दिनों को काट रही है" इस इतनी सी बातको कैसी खूबीके साथ कविने कहा है।

एक दूती किसी स्त्री की विरहावस्थामें भी सुन्दरताका वर्णन करती हुई उसके धूर्त प्रियतम से कहती है:—

> तस्यास्त्वदेकमनस: स्मरसायकार्तै:
> कार्श्यं वपु: शठ बिभर्त्ति यथा यथैव।
> लोकाधिपत्यमयतस्यैवतथा तथैव।
> कान्तिप्रदं भवति दीर्घं विलोचनाया: ॥ १८ ॥

१८ भावार्थ—हे शठ! तुम्हारी चिन्तामें सूखी जाती हुई उस मृगनयनी का शरीर कामदेव की बाणवर्षा से ज्यों ज्यों दुबला होता जाता है त्यों त्यों उसके शरीर की कान्ति और भी घनी होती जाती है। क्योंकि पहले शरीर हृष्टपुष्ट होने से उसका सौन्दर्य अधिक स्थान में फैला हुआ था, अब शरीर के दुर्बल होजाने से वही सौन्दर्य सकुचित होते होते और भी घना हो गया है।

किसी प्रगल्भानायिका का वर्णन इस श्लोक में अच्छा दिया गया है। स्त्रीके पादप्रहार करने पर पति कहता है—

> दासे कृतागसि भवत्युचितः प्रभूणा
> पादप्रहार इति सुन्दरि ! नास्मि दूये।
> उद्यत्कठोरपुलकाङ्कुरकण्टकाग्रै-
> र्यत्खिद्यते मृदु पदं ननु सा व्यथा मे ॥ १९ ॥

१९ भावार्थः—मैं आपका दास और अपराधी हू और आप मेरे प्रभु हैं। प्रभुओं का, अपराधी सेवक को लात मारना उचित ही है। अतएव हे सुन्दरि! आपके प्रहारसे मुझे दु ख इस बात का है कि आपके सुकुमार पैर मेरे शरीर में उठे हुए कठोर पुलकरूपी काटों से बिंध गये होंगे, जिससे आपको बहुत पीडा हुई होगी।

संस्कृत भाषा में "मन" शब्द नपुसकलिंग है, इस पर किसी कवि की सूझ है —

> नपुंसकमिति ज्ञात्वा प्रियायै प्रेषितं मनः।
> तत्तु तत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम् ॥२०॥

२० भावार्थ:—मैंने यह समझकर कि "मन" नपुंसक है उसे अपनी प्रिया के पास दूत बनाकर भेजा। किन्तु वह तो वहीं रम गया, आने का मन भी नहीं करता। सचमुच पाणिनिने बड़ा धोखा दिया। न पाणिनि उसे नपुंसकलिंग लिखते न हम उसे वहां भेजते।

एक विरहिणी स्त्री ईश्वरसे प्रार्थना करती हुई कहती है:—

> पंचत्वं तनुरेतु, भूतनिवहाः स्वं स्वं विशन्त्वीप्सितं,
> याचे त्वां द्रुहिण ! प्रणम्य शिरसा भूयोऽपि भूयान्मम।
> तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयालय-
> व्योम्नि व्योम, तदीयवर्त्मनि धरा, तत्तालवृन्तेऽनिलः ॥२१॥

२१ भावार्थः—मेरा शरीर पंचत्व को प्राप्त हो, तथा मेरे शरीर के पृथिवी आदि पांचों तत्त्व यथाक्रम अपने अपने तत्त्व में मिल जायं, कोई डर नहीं! किन्तु परमेश्वर से यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि पांचों तत्त्व इस क्रम से मिलें कि मेरे शरीरका जलतत्त्व उस सरोवरमें मिल जाय जिसमें मेरा प्रियतम स्नान करता है, तेजस्तत्त्व उस दर्पण में मिल जाय जिसमें वह अपना मुख देखता है, आकाशतत्त्व उस गृहाकाश में मिल जाय जो उसका निवासस्थान है, पार्थिवतत्त्व उस मार्गमें मिल जाय जिस-पर वह चला करता है, वायुतत्त्व उस पंखे में मिल जाय जिससे वह हवा लेता है। इसी भावका एक हिन्दी दोहा भी है:—

> डर न मरन, विधि विनय यह, भूत मिलैं निजवास।
> प्रियहित वापी, मुकुर, मग, बीजन, आँगन अकाश॥

इस श्लोक में किसी कविने नायक-नायिका के परस्पर-प्रेम-दर्शन का अच्छा वर्णन किया है। दोनों अपनी अपनी अट्टालिका पर खड़े हुए एक दूसरे को देख रहे हैं, इसपर कवि कहता है:—

परस्परालोकनरज्जुरेषा ह्यट्टान्तरादट्टभुवि प्रबद्धा।
गतागतं निर्भयमत्र यूनोर्नटौ विधत्तो मनसी नितान्तम् ॥२२॥

२२भावार्थः—एक दूसरेका परस्परदर्शन जो है वही एक डोरी है, जो एक अटारी से दूसरी अटारी तक बन्धी हुई है। उस पर दोनों युवक और युवतीके मन रूपी नट निश्शङ्क होकर आ जा रहे हैं।

पतिने परदेश जाने का निश्चय किया है, सिर्फ इस समाचार से ही पत्नी की जो दशा हुई वह इस श्लोक में दिखलाई गई है। श्लोक बहुत ही भावपूर्ण तथा हृदयग्राही है:—

प्रस्थानं वलयैः कृतं, प्रियसखैरस्रैरजस्रं गतं
धृत्या न क्षणमासितं, व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः।
यातुं निश्चितचेतसि प्रियतमे सर्वे समं प्रस्थिताः
गन्तव्ये सति जीवित! प्रियसुहृत्सार्थः किमुत्सृज्यते॥२३॥

२३ भावार्थः—यह सुनतेही कि उसके प्राणनाथ ने जाने का निश्चय कर लिया है, वह इतनी दुबली होगई कि कड़े हाथों से चले गये, आंसू लगातार आंखोंसे जारी हो गये, धैर्य एक क्षण भर के लिए भी न ठहरा, और चित्त तो आगे ही जाने के लिए तैयार होगया। खबर सुनते ही सबके सब एक साथ मुझे छोड़कर प्यारे का साथ देने को भागे। तो हे प्राण!

तुम्हें भी तो एक रोज़ जानाही है, तुम भी प्रियतम का साथ देने के लिए क्यों नहीं चले जाते।

पति पत्नीमें कलह हुई, पत्नी रूठ गई। पति के मनाने पर दोनों में जो प्रश्नोत्तर हुए वही इस श्लोक में हैं।

> बाले! नाथ! विमुञ्च मानिनि! रुषं रोषान्मया किं कृतं।
> खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान्सर्वेऽपराधा मयि।
> तत्किं रोदिषि गद्‌गदेन वचसा? कस्याग्रतो रुद्यते?
> नन्वेतन्मम, का तवास्मि? दयिता, नास्मीत्यतो रुद्यते॥२४॥

२४ भावार्थः—(पति सम्बोधन करता है) प्रिये! (पत्नी) क्या प्राणनाथ? (पति) हे मानिनि! क्रोध को छोड दे। (पत्नी) मैं क्रोध कर के करही क्या सकती हूं? (पति) हमारे ऊपर खेद। (पत्नी) भला मैं खेद क्यों करने लगी। क्या आपने कोई अपराध किया है, अपराध तो सब मैंने ही किये हैं, (पति) तो फिर क्यों गद्गद कण्ठसे रो रही हो? (पत्नी) किस के आगे रो रही हूं? (पति) मेरे आगे रो तो रही हो, (पत्नी) भला, मैं आपकी क्या हूं जो आपके सामने रोऊं? (पति) तुम मेरी प्रियतमा हो, (पत्नी) प्रियतमा नहीं हूं इसीसे तो रो रही हूं!

एक दूती किसी विरहविधुरा बाला की दशा का वर्णन उस के प्रियतम से करती हुई, कहती है:—

> मद्विलासलक्षसमविते तव हृदये सुभग सा अमान्ती।
> अनुदिनमनन्यकर्मा अङ्गं तनुमपि तनूकरोति॥२५॥

२५ भावार्थः—हे सुभग! तुम्हारे उस हृदय में प्रवेश पाने के

लिए, जिसमें हजारों स्त्रियां भरी हुई हैं, अतएव जिसमें बिल-कुल स्थान नहीं है, वह अभागी अपने शरीर को, जो आपही बहुत कोमल और दुर्बल है, दिन प्रतिदिन और भी दुर्बल बना रही है कि कदाचित् अब प्रवेश कर सके। आजकल उसे केवल यही एक काम रह गया है।

वह आपके वियोगमें बहुत ही दुर्बल हो गई है इस इतनी बात को कविने किस खूबी के साथ कहा है। यह श्लोक प्राकृत भाषा की गाथा सप्तशती के एक श्लोक से उल्था किया गया है। जो यों है:—महिलासहस्सभरिए तुह हिअए सुहअ! सा अमाअन्ती। अणु दिणमण एण कम्मा अंगं तणु अं वि तणुएइ।

पति के परदेश जाने के समय पत्नी कहती है:—

"मा याही"त्यपमङ्गलं, "व्रज" किल स्नेहेन शून्यं वचः।
"तिष्ठे ति" प्रभुता, "यथारुचि कुरुष्वे" त्यप्युदासीनता।
"नो जीवामि विना त्वये"ति वचनं संभाव्यते वा न वा
तन्माशिक्षय नाथ! यत्समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते॥२६॥

२६ भावार्थः—"आप मत जाय" यदि यह कहूं तो अमंगल समझा जायगा, "आप जाय" कहूं तो यह स्नेह शून्य बात समझी जायगी, "ठहरें" यदि यह कहूं तो प्रभुता समझी जायगी, "जैसे आप चाहें वैसे करें" इससे रूखापन झलकता है, "आपके बिना मैं नहीं जी सकती" यह बात कदाचित् आप विश्वास न करें, तो हे नाथ! मुझे बतलाइए कि आपके प्रस्थान

के समय में क्या कहूं ? भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रने इसका अनुवाद हिन्दीमें बहुत अच्छा किया है, यथा—

> रोकहिं जो तो अमंगल होय,
> औ प्रेम नसै जो कहौं "प्रिय जाइये"।
> जो कहौं "जाहुनहु" तौ प्रभुता,
> जो कछू न कहौं तो सनेह नसाइये॥
> जो कहौं "जीहौं न आप बिना,"
> तो कहो हरिचन्दजू क्यों पतिआइये।
> तासों पयान समै तुम्हरे हम का कहैं आपै हमै समुझाइये॥

एक बहुत ही भोलीभाली नववयस्का मुग्धा नायिका है। वह बेचारी जानती भी नहीं कि मान कैसे करना होता है। और उसका धूर्त पति उसके भोलेपनका अनुचित लाभ उठाकर मनमानी किया करता है। इस पर उसकी एक प्रौढ़ा सखी उसे आन बान के साथ रहने की सलाह देती हुई कहती है:—

> मुग्धे ! मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते ?
> मानं धत्स्व ! धृतिं बधान ! ऋजुतां दूरे कुरु प्रेयसि।
> सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना
> नीचैः शंस ! हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति॥२७॥

२७ भावार्थः—ऐ भोलीभाली ! क्या अपनी सारी जवानी तू इसी तरह अल्हड़पन में बिताना चाहती है? ज़रा अभिमान किया कर ! धैर्य के साथ रहना सीख ! अपने प्रियतम के साथ सीधे व्यवहार को छोड़ दे। अपनी सखी से इस तरह समझाई गई, उस मुग्धा ने बहुत डर कर जवाब दिया

"अरे धीरे से बोल! मेरे हृदय में बैठा हुआ मेरा प्राणनाथ कहीं सुन न ले"। भोलेपनका अन्त है! इसी भावको लेकर विहारीने यह दोहा लिखा है :—

सखी सिखावति मानविधि सैनन बरजति बाल।
हरुए कहु मो हिय बसत सदा बिहारी लाल॥

किसी स्त्री का पति या प्रेमी रोज़ रोज़ कहा करता था कि "मैं जाता हूं", "मैं जाता हूं" इस पर एक दिन वह कहती है :—

यदि यास्यसि नाथ! निश्चितं यामि यामि वचनं हि मा वद।
अशनेः पतनं न खेदनं पतनज्ञानमतीव दुःसहम्॥ २८॥

२८ भावार्थः—हे नाथ, यदि तुमने जाना निश्चय ही कर लिया है तो यह क्यों बारबार कहते हो कि "मैं जाता हूं", "मैं जाता हूं"। जाना हो तो चले जाइये, कृपा करके यह वचन बार बार मत कहिए। क्योंकि बिजलीका गिरना दुःखदायक नहीं होता, किन्तु यह बहुत ही दुःखदायक होता है यदि मालूम हो जाय कि अब बिजली गिरनेवाली है। इसी तरहसे आपका चले जाना इतना कष्टदायक न होगा, क्योंकि आपके जाते ही मेरे प्राण इस शरीरसे तुरन्त निकल जायंगे, किन्तु आपका बारबार मुझे बतलाना कि "मैं जाता हूं" "अब बिजली गिरने वाली है" इस ज्ञान के समान है।

परदेश जाने के समय कोई मनुष्य अपनी पत्नी की दशा अपने मित्रसे कह रहा है :—

याताः किं न मिलन्ति सुन्दरि! पुनश्चिन्ता त्वया मत्कृते,
नो कार्या नितरां कृशासि कथयत्येवं सवाष्पे मयि।

लज्जा मन्थरतारकेण निपतत्पीताश्रुणा चक्षुषा
दृष्ट्वा मां, हसितेन भाविमरणोत्साहस्तया सूचितः ॥ २६ ॥

२६ भावार्थ—:"हे सुन्दरि! क्या, जो बिछुड़ते हैं वे फिर नहीं मिलते, तो फिर मेरे लिए इतनी चिन्ता क्यों कर रही हो! तुम इतनी दुबली क्यों हो रही हो?" इस तरहसे मेरे आंसू बहाकर कहते ही उसने आंसुओं को छिपा कर, लज्जासे शिथिल नेत्रोंसे मेरी ओर देखा और हंस कर अपने भविष्य मरने के उत्साह को प्रगट किया। पति के उत्साह दिलानेसे उसने हंस तो दिया किन्तु उस हंसीसे उसका मरने में उत्साह टपक रहा था। अर्थात् पति के जाते ही उसके प्राणोंका का भी जाना निश्चित था।

पति परदेश जा रहा है, उस समय पति और पत्नी में जो बातें हुई हैं वही इस श्लोक में हैं। इस श्लोक का भाव बहुत ही उच्च तथा हृदय में चुभने वाला है: ---

यामः सुन्दरि!, याहि पान्थ!, दयिते! शोकं वृथा मा कृथाः,
शोकस्ते गमने कुतो मम?, ततो बाष्पं कथं मुंचसि?।
शीघ्रं न व्रजसीति मां गमयितुं कस्मादियं ते त्वरा,
भूयानस्य सह त्वया जिगमिषोर्जीवस्य मे संभ्रमः ॥ ३० ॥

३० भावार्थः—(पति) प्रिये! हम जाते हैं (पत्नी) अच्छा पथिक, जाओ। (पति) वृथा शोक मत करो। (पत्नी) भला तुम्हारे जाने पर मुझे शोक क्यों होने लगा? (पति) तो आंसू क्यों बहा रही हो? (पत्नी) इसलिये कि तुम जल्दी नहीं चले जाते। (पति) प्रिये! तुम्हें क्यों इतनी जल्दी पड़ी है कि हम

चले जायँ। (पत्नी) मुझे जल्दी नहीं पड़ी है, मेरे प्राणों को जल्दी पड़ी है कि किसी तरह से तुम घरके बाहर निकलो तो वे भी तुम्हारा साथ देने के लिए मेरे शरीर से निकलें!

पतिके पत्नी से विदा लेते समय उस स्त्री की जो दशा हुई उसी को कवि बड़ी खूबी के साथ इस श्लोक में वर्णन करता है:—

यामीति प्रियपृष्टायाः प्रियायाः कण्ठवर्त्मनि।
वचोजीवितयोरासीद्बहिर्निःसरणे रणः॥ ३१॥

३१ भावार्थः—पति ने परदेश जाते समय, पत्नी से विदा मांगते हुए कहा,—प्रिये! मैं अब जाता हूं। इसपर उस स्त्री का गला रुंध गया और वह बेचारी कुछ बोल न सकी। उसके चुप रहने का असली कारण यह था कि उसके प्राणों और वचनों में युद्ध होने लगा। वचन कहते थे कि हम पहले कण्ठ से निकलें और प्राण कहते थे कि हम पहले निकलें। बस इसी झगड़े में वह बेचारी कुछ न बोल सकी।

इसी भावका यह दोहा भी है:—

आज सखी हौं सुनति हौं पौ फाटत पिय गौन।
पौ हिय छोड़ हैं पहिले फाटत कौन॥

पति विदेश जानेको तैयार है उस समय पत्नीकी क्या दशा है, इसे कवि इस भावपूर्ण श्लोकमें कहता है!

वाचो मांगलिकी प्रयाणसमये जल्पन्त्यनल्पे जने
केलीमन्दिरमारुतायनमुखे विन्यस्तवक्त्राम्बुजा।

-निःश्वासग्लपिताधरा परिपतद्बाष्पार्द्रवक्षोरुहा
बाला लोलविलोचना शिव ! शिव ! प्राणेशमालोकते ॥३२॥

३२ भावार्थः--प्राणेश्वरके जानेके समय, जबकि सब कुटुम्बके लोग मंगल पाठ कर रहे हैं, उस समय वह बाला, जिसके अधरपुट दुःखकी सांस लेनेसे मुरझा गये हैं, और दोनों स्तन आंसुओंसे लगातार भीग रहे हैं, क्रीड़ामन्दिरके झरोखेमें अपने मुख कमलको रखकर चंचल नेत्रोंसे केवल जाते हुए प्राणनाथको देख रही है। पतिके परदेश जाते समय किसी परदेवाली नववयस्का स्त्री का हार्दिक भाव इस श्लोक में कवि ने अच्छा दिखलाया है। बेचारी लज्जा के मारे पति से जाते समय खुल के बातचीत भी नहीं कर सकती।

एक विरहिणी अपनी सखी के द्वारा पति के पास भेजने के लिये सन्देसा कह रही है :—

वाच्यं तस्मै सहचरि ! भवद्भूरिविश्लेषवह्नौ
स्नेहैरिद्धे मम वपुरिदं काम होता जुहोति ।
प्राणानस्मै तदहमुचितां दक्षिणां दातुमीहे
तत्रादेशो भवतु भवतो, यस्त्वमेषामधीशः ॥ ॥ ३३ ॥

३३ भावार्थः—हे सखि ! उन से जाकर कहना कि कामदेव रूपी होता (यज्ञ करानेवाला पुरोहित) मेरे शरीर को स्नेह रूपी घृत से प्रज्वलित किये गये तुम्हारी वियोगरूपी, अग्नि में हवन कर रहा है। अब उस पुरोहित को मैं प्राणरूपी दक्षिणा देना चाहता हूं, किन्तु उस में आप की आज्ञा की आवश्यकता है, क्योंकि उन प्राणों के मालिक तो आप ही हैं। यदि आप की

आज्ञा हो तो मैं इन प्राणों को त्याग कर वियोगतप्त जीवन से छुटकारा पा जाऊं।

एक कोमलांगी स्त्री विरहज्वर से पीड़ित है। उस की सखियां कमलदल से उसे हवा कर रहीं हैं। इसपर वह उन से कहती है:—

विरमत! विरमत! सख्यो! नलिनीदलतालवृन्तपवनेन।
हृदयगतोयं वह्निर्झटिति कदाचिज्ज्वलत्येव॥ ॥ ३४॥

३४ भावार्थः—सखियों! कमलदल के पंखे से मुझे हवा मत करो! मत करो! मेरे हृदय में विरह की आग जो धीरे धीरे सुलग रही है, वह कहीं एकदम से भभक न उठे!

एक धूर्तपति अपनी पत्नी से रोज कहा करता था "हम दोनों तो एकमन दो तन हैं"। एक दिन अन्य स्त्री से संभोग कर जब वह घर लौटा तो उस के शरीर में रतिचिन्हों को देख-कर ताने के साथ उस की पत्नी कहती है:—

सत्यमेव गदितं त्वया विभो!
"जीव एक" इति यत् पुरावयोः।
अन्यदारनिहिताः नखक्षणा
स्तावके वपुषि पीड़यन्ति माम्॥ ३५॥

३५ भावार्थ—स्वामिन्! आप पहले जो कहा करते थे कि "हम दोनों के प्राण एक हैं" वह आज सच्चा साबित हुआ। यदि हम दोनों के प्राण एक न होते तो आप के शरीर में पड़े हुए अन्य स्त्री के नखचिह्न मुझे क्यों पीड़ा देते।

वसन्त ऋतु में एक मृतक पथिक रास्ते पर एक आम के पेड़ के पास पड़ा हुआ मिला। इस पर एक कवि कहता है:—

सव्याधेः कृशता, क्षतस्य रुधिरं दष्टस्य लालास्रुतिः
किंचिन्नैतदिहास्ति, तत्कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः।
आः! ज्ञातं मधुलंपटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले
नूनं! साहसिकेन चूत मुकुले दृष्टिःसमारोपिता ॥ ३६ ॥

३६ भावार्थ :—यदि यह किसी बीमारी से मरा होता तो कम से कम दुबला तो होता; यदि कोई घाव होता तो रक्त बहता; यदि सांप काटे होता तो मुंह से फिचकुर बहता होता। ये सब तो कुछ नहीं हैं, फिर यह बेचारा पथिक मरा कैसे! अच्छा! समझे, मधुके लालची भौरों की झनकार से खिंचकर इसने, अवश्य, साहस करके, आम की मंजरी पर एक दृष्टि डाल दी होगी।

कोई कामी पुरुष अपनी प्रियतमा के वक्षःस्थल पर लटकते हुए मोतियों के हार को संबोधन करके कहता है :—

सूचीमुखेन सकृदेव कृतव्रणस्त्वं
मुक्ताकलाप! लुठसि स्तनयोः प्रियायाः।
बाणैः स्मरस्य शतशो विनिकृत्तमर्मा
स्वप्नेऽपि तां कथमहं न विलोकयामि ॥ ३७ ॥

३७ भावार्थ—ऐ मुक्ताहार! तुम सिर्फ एक बार सुई से छेदे गये हो और उसी से मेरी प्रिया के स्तनों पर रोज़ पड़े रहते हो और उन पर लुण्ठन करते हो। अरे! हम तो रोज़ कामदेव के बाणों से सैकड़ों बार मर्मस्थानों में छेदे जाते हैं, परन्तु हमें तो स्वप्न में भी वह नहीं दिखलाई पड़ती! स्तनों पर लुण्ठन करना तो दूर रहा!

विदेश जाते हुए पति और पत्नी में जो बात चीत हुई वही इस श्लोक में किसी कवि ने वर्णन किया है :—

स्मर्तव्या वयमिन्दुसुन्दरमुखि! प्रस्तावतोऽपि त्वया
सत्यं नाथ! यदि प्रदास्यति विधिर्जातिस्मरत्वं मम।
एकस्मिन्नपि जन्मनि प्रियतमे! जातिस्मरत्वं कथं
प्राणाः पान्थ! समं त्वयैव चलिताः कायापि जन्मैकता ॥३८॥

३८ भावार्थ.—(पति) "चन्द्रमुखि! मुझे भी कभी कभी स्मरण करते रहना"। (पत्नी) "नाथ! अवश्य स्मरण करूंगी यदि मुझे जन्मान्तर की बात याद रहेगी।" "(पति) प्रियतमे! यह तुम क्या कहती हो!, इस एक ही जन्म में जन्मान्तर की बात कैसी? (पत्नी) हे पथिक! प्राण तो तुम्हारे साथ ही जा रहे हैं, अब वही जन्म और वही शरीर कैसा।"

एक स्त्री अपने प्रियतम को लिखती है :—
स्मर्तव्याऽहं त्वया काले न स्मरिष्याम्यहं तव।
स्मरणं चेतसो धर्मं तच्चेतो भवता हृतम् ॥ ३६ ॥

३६ भावार्थ :—कभी कभी कृपा करके आप मुझे स्मरण कर लिया करें। मैं तो आपका स्मरण कर नहीं सकती। क्योंकि स्मरण करना चित्तका धर्म है, उस चित्त को आप चुरा ले गये हैं। अतएव मैं आपको कैसे स्मरण कर सकती हूं।

अमरूशतक में एक श्लोक है जो अभगश्लेष का बहुत अच्छा उदाहरण है। इसमें कविने "मुक्तानां" इस शब्द पर काम किया है। मुक्त माने "मोती" और "मोक्षपद प्राप्त" दोनों हैं :—
हारोऽयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले।
मुक्तानामप्यवस्थेयं के वयं स्मरकिङ्कराः ॥ ४० ॥

४० भावार्थ :—मोतियों की यह माला मृगनयनियों के स्तन-मण्डल पर लुण्ठन कर रही है। जब मुक्तों की (जो मोक्षपद प्राप्त हो चुके हैं उनकी) यह दशा है, तो हमारा क्या कहना जो कामदेव के दास हो रहे हैं।

सखीके बार बार कहने पर कि तू क्यों ज़ोर ज़ोरसे रोती है विरह विधुरा स्त्री उत्तर देती है :—

> अनुदिन मतितीव्रं रोदिषीतित्व मुच्चैः
> सखि! किल कुरुषे त्वं वाच्यतां मे मुधैव ।
> हृदयमिदमनंगांगारसंगाद्विलीय
> प्रसरति बहिरेतः सुस्थिते! नैतदश्रु ॥ ४१ ॥

४१ भावार्थ :—"तू रोज़ रोज़ बहुत रोती रहती है" ऐसा कह कर हे सखी तुम मुझे क्यों व्यर्थको बदनाम किया करती हो। कामाग्निसे पिघल पिघल कर यह हृदय पानी होकर बाहर निकल रहा है! हे विरह पीड़ासे अनभिज्ञ स्वस्थचित्तवाली यह आंसू नहीं हैं। इसी अर्थका बिहारीका यह दोहा भी है :..

> तच्यो आंच अति विरहकी रह्यो प्रेम रस भीज ।
> नैननि के मग जल, बहै हियो पसीज पसीज ॥

पति परदेश जा रहा है, उस समय पति और पत्नीके बीचमें जो बातचीत हुई वही इस श्लोकमें है :—

> बाले! नाथ विमुंच मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं,
> खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान्सर्वेऽपराधा मयि ।
> तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते,
> नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥ ४२ ॥

४२ भावार्थ :—(पति) प्रियतमे ! थोड़े दिनकी तो बात है, आंख मूंदकर कुछ दिन तुम किसी तरहसे बिता दो। (पत्नी) हां ! हां ! मैं आंखों को तबतक बन्द किये रहूंगी जबतक दिशाएं मेरे लिये बिलकुल शून्य न हो जायंगी। (पति) घबड़ानेकी बात नहीं है, मैं बहुत जल्द लौट आऊंगा। (पत्नी) अगर आप लौटेंगे तो अपने मित्र और घरवालोंके भाग्य से। (पति) जो कुछ तुम चाहती हो वह कहो ! बोलो क्या कहना चाहती हो ? (पत्नी) जब किसी तीर्थमें जाना तो मेरे नाम तिलांजलि दे देना बस यही मैं चाहती हूं।

कैसा बढ़िया व्यंग्य इस श्लोकमें पत्नीने कहा है !

प्रियतमके परदेशसे आनेपर किसी स्त्रीकी दशा इस श्लोक में बड़े अच्छे ढंग से वर्णन की गयी है :

दृष्टिर्चन्दनमालिका, स्तनयुगं लावण्यपूर्णौ घटौ,
शुभ्राणां प्रकरः स्मित सुमनसा, वक्त्रप्रभा दर्पणः।
रोमांचोद्गम एव सर्षपकणाः, पाणी पुनः पल्लवौ,
स्वांगैरेव गृह प्रियस्य विगतस्तन्व्या कृतं मंगलम् ॥ ४३ ॥

४३ भावार्थ :—जब प्रियतम घरमें प्रवेश करने लगा तो उसकी प्रियतमाने अपने अंगोंहीसे यथोचित मगलाचार पूरा किया। उसके एकटक देखनेने बन्दनवार का, दोनों स्तनोंने लावण्यरूपी जल से भरे हुए दो घड़ोंका मुस्कराहटने सफेद फूलकी वर्षाका, मुखकी कान्तिने दर्पणका, रोमांचने सरसों के कणोंका, हाथोंने पल्लवोंका काम दिया।

इस श्लोकमें कोई अपने मित्रको उसकी विरह विधुरा प्रियतमाका हाल पत्र लिखकर सूचित करता है :—

यावद् यावद् भवति कलया पूर्ण कामः शशाक
स्तावत्तावद्वपु तिमयवपुः क्षीयते स मृगाक्षी।
मन्ये धाता घटयति विधुं सारमादाय तस्या—
स्तस्माद्यावन्न भवति सखे! पूर्णिमा तावदेहि॥ ४४॥

४४ भावार्थ :—जैसे जैसे चन्द्रमा एक एक कला बढ़ता जाता है वैसे वैसे उस मृगनयनी—आपकी प्रियतमा—का सुन्दर शरीर क्षीण होता जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्मा उसके शरीरका सार खींच खींचकर चन्द्रमाको बना रहा है। इसलिये मित्र! जब तक पूर्णिमा न होने पावे तब तक मैं चले आओ। नहीं तो फिर हाथ मल मलकर पछताना पड़ेगा। क्योंकि पूर्णिमाके बाद उसका अस्तित्व कहा।

नायिका अवयव वर्णन.

किसी स्त्री के अधर की तारीफ में एक कवि कहता है :—

अधरोऽयमधीराक्ष्याः बन्धुजीव प्रभाहरः।
अन्यजीवप्रभाहन्त! हरतीति किमद्भुतम्॥ ४५॥

४५ भावार्थ.—इस चञ्चल नेत्रवालीके अधर बन्धुजीव (गुल दुपहरिया के फूल) की प्रभाको हरने वाले हैं, अर्थात् उनसे भी अधिक लाल और सुन्दर हैं। जब वे बन्धुजीव (अपने भाई के जीवन) की प्रभाको हर लेते हैं तो दूसरों के जीवन की प्रभा को हर लेंगे इस में आश्चर्य ही क्या है!

"बन्धुजीव" इस शब्दमें श्लेष है। इसके माने "गुल दुपहरिया का फूल" तथा "भाई का जीवन" दोनों हैं।

एक कवि किसी स्त्री को संबोधन करके कहता है :—

> कठिनपीनपयोधरताड़िता,
> तव विराजति भामिनि कंचुकी।
> विजयिनस्त्रिपुरारिजिगीषया,
> पटकुटीयमनोभवभूपतेः॥ ४६॥

४६ भावार्थ :–हे सुन्दरि, कठोर और पीन पयोधरों के ऊपर तुम्हारी कंचुकी अतीव शोभा दे रही है। ऐसा मालूम होता है कि कामदेव रूपी राजाने महादेव के विजय करने के लिये खेमा गाड़ रक्खा हो।

कोई स्त्री अपने स्तनों को क्यों छिपाए हुए है इस पर एक कवि बड़ी अच्छी उत्प्रेक्षा करता है :—

> तन्वङ्ग्याः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम्।
> हाराय गुणिने स्थानं न दत्तमिति लज्जया॥ ४७॥

४७ भावार्थ :–इस सुकुमार अङ्गवाली स्त्री के स्तनों ने मारे शर्म के अपने को नहीं प्रकट किया। गुणवाले (डोरीवाले) हार को हमने अपने ऊपर स्थान नहीं दिया यही उनके शर्म का कारण था। "गुणिने" इस शब्द में यहां पर श्लेष है। "गुण" माने डोरी और अच्छी बातें दोनों हैं। अतएव "गुणिने" का अर्थ यहां पर "गुणवाला" तथा "डोरी या तागा में गुंथा हुआ" दोनों है।

एक रसिक कवि अपनी प्रियतमा के साथ नदी में जलक्रीड़ा

करता हुआ अपनी पत्नी के मुख और वक्षस्थल की छाया जल में पड़ती हुई देखकर कहता है:—

> नेयं ते मुखमण्डल प्रतिकृतिश्छाया न हारोद्भवा
> वक्षोजौ प्रतिबिम्बितौ न सलिले जाने हि तथ्यं प्रिये ! ।
> अप्राप्याननसौभगं तव शशी मुक्ताचितैर्दामभिः ।
> कण्ठे हेमघटद्वय परिबधत् पानीयमध्यं गतः ॥ ४८ ॥

४८ भावार्थ :—हे प्रिये ! यह जो तुम जल में देख रही हो वह तुम्हारे मुख की छाया नही है, और यह हार जो तुम पहने हुए हो उस की भी परछाईं नही है, और न तुम्हारे दोनों उरोजों का प्रतिबिम्ब ही यह दिखलाई पड़ रहा है। तो फिर है क्या ?। चन्द्रमा तुम्हारे मुख की सुन्दरता को न पाकर मुक्ताग्रथित डोरी से बन्धे हुए दो घड़ों को अपने कण्ठ में लटका कर शर्म के मारे डूबने के लिये पानी के अन्दर चला गया है। अर्थात् यह तुम्हारे मुख की छाया नहीं बल्कि शशी है, हार की परछाईं नही बल्कि मोती से गुथी हुई डोरी है, और तुम्हारे पीनपयोधरों का प्रतिबिम्ब नहीं बल्कि ये दो घड़े हैं, जिन्हें गले के दोनों ओर लटका कर चन्द्रमा पानी में डूब मरा है।

कोई स्त्री बार बार गेन्द को अपने हाथों से फेंक रही है। गेंद खेलते खेलते उस का एक कमल जो वह कानों में पहिने हुए थी, उस के पैरों के पास गिर पड़ा। इसपर एक कवि कल्पना करता है :—

> पयोधराकारधरोहि कन्दुकः करेण रोषादभिहन्यते मुहुः ।
> इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पलं स्त्रियः प्रसादाय पपात पादयोः ॥४९॥

४६ भावार्थ :—इस गेन्द ने उस के पयोधरों के आकार की तुलना की है, इसलिये वह बारबार उस कामिनी के करों से ताड़न किया जाता है। मैं भी तो उस के नेत्रों के समान हूं कहीं मेरी भी खबर इसी तरह से न ली जाय, बस इसी कारण से उस सुन्दरी को प्रसन्न करने के लिये वह कमल उसके चरणों पर गिर पड़ा

चन्द्रमा को ग्रहण लगनेवाला है, उस समय कोई किसी सुन्दरी स्त्री से कह रहा है :—

> प्रविश झटिति गेहं मा बहिस्तिष्ठ कान्ते !
> ग्रहणसमयवेला वर्त्तते शीतरश्मेः ।
> तव मुखमकलंकं वीक्ष्य नूनं स राहु
> र्ग्रसति तव मुखेन्दु' पूर्णचन्द्रं विहाय ॥ ५० ॥

५० भावार्थ :—सुन्दरि ! चन्द्रमा का ग्रहण अब लगने ही वाला है। इसलिये झट से घरके भीतर घुस आओ, बाहर मत खड़ी रहो। मुझे डर लगता है कि तुम्हारे निष्कलंक मुखको देख-कर राहु, पूर्णमासी के चान्दको छोड़कर, कहीं तुम्हारे मुखचन्द्र को न ग्रस ले। इसी ढंग का एक उर्दूका शेर भी है :—

> बाम पर नंगे न जाओ तुम शबे महताब में।
> चान्दनी पड़ जायगी मैला बदन हो जायगा ॥

सुन्दर स्त्रियों के मुख की प्रशंसा में कोई कवि कहता है :—

> यदपि विबुधैः सिन्धोरन्तः कथंचिदुपार्जितं
> तदपि सकलं चारु स्त्रीणां मुखेषु विलोक्यते ।
> सुरकुसुमनसः श्वासामोदे, शशीच कपोलयो
> रमृतमधरे, तिर्यग्भूते विषंच विलोचने ॥ ५१ ॥

५१ भावार्थः—जिन चीजों को बड़े कष्ट से देवताओं ने समुद्र के अन्दर से निकाला था वे सब की सब सुन्दरी स्त्रियों के मुख में दिखलाई पड़ती हैं। उनके सांस में स्वर्गीय वृक्षों के पुष्पों की महक, कपोलों में चन्द्रमा की शोभा, अधर में अमृत का स्वाद, और तिरछी नज़रों में ज़हर का सा असर है।

कुचों की तारीफ में किसी कवि की अनोखी सूझी है :—

यन्न माति तदंगेषु लावण्यमतिसंभृतम्।
पिण्डीकृतमुरोदेशे तत्पयोधरतां गतम्॥ ५२॥

५२ भावार्थः—जो सुन्दरता और लवनाई उस कामिनी के अंगों में न समा सकी, उसी को विधाता ने गठरी में बांधकर पयोधरों के रूप में रख दिया। जो चीज़ खर्च होने से बच जाती है उसे लोग गठरी में बान्धकर अलग एक स्थान पर रख देते हैं।

चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय पर एक कवि की उक्ति है :—

वर्द्धते मुखसादृश्यमवाप्तुं हरिणीदृशः।
क्षीयते भ्रूतुलामेतु मुभयोरक्षमो विधिः॥ ५३॥

५३ भावार्थ :—इस मृग नयनी के मुख की बराबरी पाने के लिये चन्द्रमा बढ़ता है। जब देखता है कि वह मुख की तुलना नहीं पा सकता तो घटने लगता है कि कदाचित् उसके भौं की बराबरी पा जाय। किन्तु वह उसमें भी अकृतकार्य होता है। इसी भाव का एक फारसी का शेर भी है :—

महशुद तमाम ताचो रुखे ऊ शवद न शुद।
काहीद बाज़ ता ख़मे अबरू शवद, न शुद॥

किसी स्त्री के सौन्दर्य की प्रशंसा में एक कवि कहता है :—

सा दृष्टा येनैवा दृष्टा मुषिताः सममेव ते ।
हृदयं हृतमेकेषामन्येषां चक्षुषोः फलम् ॥ ५४ ॥

५४ भावार्थ :—जिन्होंने उसे देखा और जिन्होंने उसे न देखा दोनों ही ठगे गये। जिन्होंने उसे देखा उनका हृदय चोरी हो गया, और जिन्होंने उसे न देखा उनकी आंखोंका फल चोरी हो गया। अर्थात् जिन्होंने उसे देखा उनका हृदय उस पर अनुरक्त हो गया और जिन्होंने उसे न देखा उनकी आंखें निष्फल हैं।

युवावस्था के आते ही स्त्रियों के अंगों में क्या क्या परिवर्त्तन होते हैं, इस श्लोकमें बड़ी सुन्दरता के साथ दिखलाया गया है :—

श्रोणीभागस्त्यजति तनुतां सेवते मध्यभागः,
पद्भ्यां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्याम् ।
धत्ते वक्षः कुचसचिवतामद्वितीयं च वक्त्रं,
तद्गात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥ ५५ ॥

५५ भावार्थ :—*नव यौवन के आते ही स्त्री के अंग एक* दूसरे से गुणों के परिवर्त्तन करने में दत्तचित्त हुए। नितम्ब पतलेपन को छोड़ रहा है और कटि देश उसे ग्रहण कर रहा है। अर्थात् नितम्ब स्थूल और कमर पतली होती जा रही है। पैर चंचलता को त्याग रहे हैं और नेत्र उसे स्वीकार कर रहे हैं। अर्थात् चाल में गंभीरता और आखोंमें चंचलता आ रही है। उसका वक्ष स्थल कुच (द्वितीय)—सहित और मुख अद्वितीय हो रहा है। इसी तरह उसके अंग आपसमें एक दूसरे से गुणों का अदला बदला कर रहे हैं।

कोई स्त्री बार बार गेन्दको अपने हाथोंसे उछाल रही है। इस पर एक कवि गेन्दको संबोधन करके कहता है :—

विदितं ननु कन्दुक ! ते हृदयं प्रमदाधर संगमलुब्धमनाः।
वनिताकरतामरसाभिहतः पतितः पतितः पुनरुत्पतसि ॥५६॥

५६ भावार्थ :—गेन्द ! मुझको तेरे हृदयकी बात मालूम हो गयी। तू इस कामिनीके अधर रसको पान करना चाहता है। इसी लिये उसके करकमलसे फेंका जाने पर भी तू बार बार गिरता है और बार बार उठता है।

सब अङ्ग तो आभूषणसे सजाये जाते हैं पर केश बान्धे जाते हैं। इस पर किसी कविकी अनोखी सूझ है :—

शान्ते मन्मथसंगरे रणभृतां सत्कारमातन्वति
वासोऽदाज्जघनस्य पीनकुचयोर्हारं श्रुतेः कुण्डलम्।
बिम्बोष्ठस्य च वीटिकां सुनयना पाण्योः रणत्कङ्कणे।
पश्चाल्लग्विनि केशपाशनिचये युक्तोह्यियन्धक्रमः ॥ ५७ ॥

५७ भावार्थ :—कामयुद्ध समाप्त होने पर लड़ाईमें आगे रहनेवालोंको पुरस्कार देनेके समय कामिनीने जंघाओंको साड़ी, कुचोंको हार, कानोंको कुण्डल ओठोंको पानकी बीड़ी और हाथोंको कंकण दिया। केश पीछे रहे इसलिये वह उन्हें बान्ध रही है। लड़ाईमें पीठ दिखलानेवालोंको सजा देना उचित ही है।

किसी मृगनयनीकी आंखोंकी तारीफमें एक कवि कहता है:—

श्यामं सितं च सुदृशो न दृशोः स्वरूपं
किन्तु स्फुटं गरलमेतदथामृतं च।

नोचेत्कथं निपतनाद्नयोस्तदैव ।
मोहं मुदं च नितरां दधते युवानः ॥ ५८ ॥

५८ भावार्थ :—इस मृगनयनीकी आंखोंमें जो यह कालापन और सफ़ेदी है सो असलमें कालापन और सफ़ेदी नहीं है बल्कि ज़हर और अमृत है। अगर उसकी आंखोंमें ज़हर और अमृत नहीं है तो उनके देखते ही क्यों नवयुवक लोग एक साथ ही मतवाले भी हो जाते हैं और आनन्दमें भी भर जाते हैं। अर्थात् उसकी आंखोंमें जो कालापन है वह ज़हर है जिसके असर से युवकगण मदमत्त हो जाते हैं और उसकी आंखोंमें जो सफ़ेदी है वह अमृत है जिसका असर पड़ते ही वे लोग आनन्द लहरी में ग़ोता लगाने लगते हैं। इस श्लोकका भाव नीचे लिखे हुए दोहे से लिया गया है, पर दोहेका भाव इस श्लोक के भावसे कहीं ऊंचा है।

अमी हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार ।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत जेहि चितवत एक बार ॥

सन्ध्याकाल और चन्द्रवर्णन।

चन्द्रमा में जो कलंक है उस पर किसी कवि ने कल्पना की है :—

अंकं केऽपि शशंकिरे, जलनिधेः पंकं परे मेनिरे
सारंगं कतिचिच्च संजगदिरे, भूमेश्च बिंबं परे ।
इन्दौ यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दरीदृश्यते
तन्मन्ये रविभीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमालक्ष्यते ॥ ५६ ॥

५६ भावार्थ :—चन्द्रमा में जो यह काला धब्बा है उसे कोई कलंक समझते हैं; कोई यह समझते हैं कि चन्द्रमा समुद्र से मथ कर निकाला गया है अतएव यह काला धब्बा समुद्रका कीचड़ है जो उसमें लगा रह गया है; कोई उसे मृग समझते हैं इसी से चन्द्रमा मृगलांछन कहा जाता है; और कोई चन्द्रमा पर पड़ा हुआ पृथ्वी का प्रतिबिंब उसे मानते हैं। पर मैं तो यह समझता हूं कि चन्द्रमा में जो यह नीलम के टुकड़े के समान काला दाग़ दिखलाई पड़ता है वह अन्धकार है जो सूर्य से डरकर चन्द्रमा की गोदमें शरण लेकर बैठा हुआ है।

किसी कवि ने नीचे लिखे हुए श्लोक में सायंकाल का वर्णन करते हुए अच्छा "समासोक्ति" अलंकार बांधा है। इसमें चन्द्रमा नायक और रजनी नायिका दिखलाई गई है :—

अंगुलीभिरिव केशसंचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी ॥६०॥

६० भावार्थ :—चन्द्रमा अपनी किरणरूपी अङ्गुलियों से अन्धकार रूपी केशों के समूह को पकड़ कर निशारूपी नायिका के मुख (सन्ध्याकाल) को चुम्बन कर रहा है। सूर्यास्त हो जाने पर मुंदे हुए कमल इस नायिका के मुंदे हुए नेत्र हैं। चन्द्रमा नायक है, निशा नायिका है, अन्धकार समूह उस नायिका के बाल हैं, किरणें उस नायक की अङ्गुलियां हैं जिनसे वह नायिका के बालोंको पकड़ रहा है, मुद्रित कमल उस नायिका के प्रेम में

मुंदे हुए नेत्र हैं, और संध्याकाल (रजनीमुख) उस नायिका का मुख है।

संध्याकाल में उदय होते हुए चन्द्रमा पर किसी कवि की अच्छी सूझ है। यह श्लोक काव्यप्रकाश में "अस्थानस्थसमास" नामक दोष के उदाहरण में दिया गया है।

"अद्यापि स्तनशैलदुर्गविषमे सीमन्तिनीनां हृदि
स्थातुं वाञ्छति मान एष धिगिति !" क्रोधादिवालोहितः।
प्रोद्यद् दूरतरप्रसारितकरःकर्षत्यसौ तत्क्षणात्
फुल्लत्कैरवकोषनिःसरदलिश्रेणीकृपाणं शशी ॥ ६१ ॥

६१ भावार्थः—"मानवती स्त्रियोंके हृदयमें, जो स्तनरूपी पहाड़ी किलोंसे सुरक्षित है, मान अब भी रहना चाहता है, धिक्कार ! है उसे" ऐसा ख़याल कर चन्द्रमा क्रोधके मारे लाल हो गया, और उसी समय दूर दूर तक फैले हुए किरण रूपी हाथोंसे फूली हुई कुईंकी कलियोंसे निकलती हुई भ्रमर पंक्ति रूपी तलवारको सहसा खींच रहा है कि मान को इस अपनी तलवारके ज़ोरसे परास्त करें। सन्ध्याकाल के बाद चन्द्रमा के उदय होने पर बड़ी से बड़ी मानवती स्त्रियोंका भी मान दूर हो जाता है इस बात को कविने कैसी ख़ूबी के साथ दिखलाया है।

अस्ताचल को जाते हुए सूर्य को देख एक कवि कहता है:—

अयं मन्दद्युतिर्भास्वानस्तं प्रति यियासति।
उदयः पतनायेति श्रीमतो बोधयन् नरान् ॥ ६२ ॥

६२ भावार्थ—सायंकाल में प्रकाश रहित और तेजोहीन हो

र सूर्य, धनवान् मनुष्यों को यह बतलाता हुआ धीरे धीरे अस्त रहा है कि "जिसका एक बार उदय हुआ है उसका अस्त अवश्य होगा।"

सन्ध्या समय अस्ताचलको जाते हुए सूर्यको देखकर एक वि कहता है :—

कोऽत्र भूमिवलये जनान्मुधा
तापयन्सुचिरमेति सपदः।
वेदयन्निति दिनेन भानुमा—
नाससाद चरमाचल तत ॥ ६३ ॥

६३ भावार्थ :—"इस पृथ्वीमण्डल पर कौन ऐसा है जो र्थ लोगोंको संताप पहुंचा कर भी चिरकाल तक उच्च ना रहे और संपत्तिका भोग करता रहे"—इस बातको मानों तलाता हुआ सूर्य ससारको तपा कर दिन भरके बाद ही स्ताचलको प्राप्त हो रहा है।

सायंकालको समुद्रमें डूबते हुए सूर्यको देखकर किसी वियने एक अनोखी कल्पना की है :—

कृत्वा प्रबुद्धकमलामखिलां त्रिलोकी—
मंभोनिधेर्विशति गर्भमसाविदानीम्।
अन्त प्रसुप्तहरि नाभिसरोजबोध—
प्रीतृहलीव भगवानरविन्द बन्धु ॥ ६४ ॥

६४ भावार्थ :—तीनों लोकोंके सब कमलोंको विकासित रके अरविन्द बन्धु (कमलोंके मित्र) सूर्य भगवान् अब क्षीर-

सागरमें सोते हुए विष्णु भगवान्‌के नाभिसे उगे हुए कमलको विकासित करनेके लिये समुद्रके गर्भमें लीन हो रहे हैं।

इस श्लोकमें किसी कविने प्रभातका बहुत ही प्राकृतिक वर्णन किया है :—

अभूत्प्राची पिंगा रसपतिरिव प्राश्य कनकं
क्षणात्क्षीणा तारा नृपतय इवानुद्यमभृतः।
गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि
न राजन्ते दीपा द्रविण रहिता नामिव गुणाः॥ ६५॥

६५ भावार्थ :—सोना पी लेनेके बाद पारा जैसे तपाए हुए सोनेकी भांति चमकने लगता है उसी तरह पूर्व दिशा भी सूर्यकी लालीसे तपाए हुए सोनेकी तरह चमक रही है। आलसी राजाओंकी तरह तारे भी क्षणभरमें क्षीण होकर लोप हो गये। जिस तरहसे गंवारोंके बीचमें बुद्धिमानोंकी श्री हत हो जाती है उसी तरह चन्द्रमा भी प्रभातकालमें श्रीहत होकर अस्त हो रहा है। दीप वैसे ही शोभा नहीं देते जैसे धनहीन—बे कौड़ी पैसे वाले मनुष्यके गुण शोभा नहीं देते।

चन्द्रमा में जो यह काला धब्बा है वह क्या है इस पर किसी कवि ने इस श्लोक में अनोखी कल्पना की है। यह श्लोक काव्य प्रकाशमें अपह्नुति अलंकार के उदाहरण में दिया गया है।

अवासः प्रागल्भ्यं परिणतरुचः शैलतनये!
कलंको नैवायं विलसति शशांकस्य वपुषि।
अमुष्येयं मन्ये विगलदमृतस्यन्दशिशिरे
रतिश्रान्ता शेते रजनिरमणी गाढमुरसि॥ ६६॥

६६ भावार्थः—शिव पार्वतीसे कहते हैं:—"हे शैलतनये, यह जो पूर्णमासीके चान्द में बड़ा सा काला धब्बा दिखलाई पड़ता है यह कलक नहीं है। तो फिर है क्या ? निशा रूपी नायिका रति से खिन्न होकर अपने प्रियतम की गोद में, जो अमृत के प्रवाह से शीतल हो रही है, गाढ़ निद्रामें सो रही है।"

चन्द्रमा पर किसी कविने कल्पना की है :—

इद व्योमसरोमध्ये भाति चन्द्रसितोत्पलम् ।
मलिनोऽन्तर्गतो यत्र कलंको भ्रमरायते ॥ ६७ ॥

६७ भावार्थः—आकाश रूपी तालाबके बीच में यह चन्द्रमा एक सफेद कमल है, जिस पर कलंक भौंरे के समान शोभा दे रहा है।

चन्द्रमा की किरणों का नीचे के श्लोक में बड़ा अच्छा वर्णन है। यह श्लोक काव्यप्रकाश में भ्रान्तिमान् अलंकार के उदाहरण में आया है :—

कपाले मार्जारः पय इति करांल्लेढि शशिन—
स्तरुच्छिद्रप्रोतान् बिसमिति करी संकलयति ।
रतान्ते तल्पस्थान्हरति वनिताप्यंसुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो ! विभ्रमयति ॥ ६८ ॥

६८ भावार्थः—कटोरे पर पड़ती हुई चन्द्रमा की किरणों को बिलार यह समझ कर कि दूध है जीभ से चाट रहा है। पेड़ के पत्तों से छनती हुई किरणों को हाथी यह समझ कर कि कमल की नाल है सूँड़ से उखाड़ रहा है। रति के अन्त में पलंग पर

ड़ती हुई चन्द्रमा की किरणों को स्त्री यह समझ कर कि साड़ी है पलंग पर से उसे उठाने के लिये हाथ फेर रही है। प्रभा के मद में मतवाला हो कर चन्द्रमा समस्त जगत को भ्रम में डाल रहा है।

किसी कवि ने रात के वर्णन में कापाली का अच्छा रूपक बांधा है:—

ज्योत्स्नाभस्मच्छुरणधवला बिभ्रती तारकास्थी—
न्यन्तर्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम्।
द्वीपाद्द्वीपं भ्रमति दधती चन्द्रमुद्राकपाले
न्यस्तं सिद्धांजनपरिमलं लाञ्छनस्यच्छलेन ॥६६॥

६६ भावार्थः—रात्रि एक कापाली है। यह चान्दनी रूपी भस्म को रमाए हुए, तारा रूपी अस्थियों को धारण किये हुए, चन्द्रमा रूपी खप्पर में कलंक रूपी भभूत को रक्खे हुए, एक द्वीपसे दूसरे द्वीप में भ्रमण कर रही है। जैसे कापाली अन्तर्धान हो जाती है उसी तरह यह भी दिन में छिप जाया करती है।

किसी ने पूर्णिमा की रात्रि तथा चन्द्रमा का अच्छा वर्णन किया है। यह श्लोक साहित्य दर्पण में अपह्नुति अलंकार के उदाहरण में दिया गया है:—

नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभंगाः।
नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासौ कलंकःशयितो मुरारिः॥७०॥

७० भावार्थः—यह आकाश नहीं बल्कि क्षीरसमुद्र है, ये तारे नहीं बल्कि समुद्र के फेन हैं, यह चन्द्रमा नहीं बल्कि गोड़िरी

मारे शेष नाग हैं, और यह कलंक नहीं बल्कि विष्णु भगवान शेषशय्या पर सो रहे हैं।

चन्द्रमा में जो यह काला धब्बा है वह क्या है? इसपर एक कवि कहता है :—

पीतमेतदलिवृन्दमेचकं ध्वान्तमेव सकलं हिमत्विषा।
स्वच्छविग्रहतया शशाकृतेः छद्मना बहिरिवास्य लक्ष्यते ॥७१॥

७१ भावार्थ.—चन्द्रमा ने उदय होते ही भौरों के समान काले अन्धकार को बिलकुल पी लिया। वही अन्धकार, चन्द्रमा का शरीर अत्यन्त स्वच्छ होने से, शशांक के रूप में बाहर झलक रहा है।

रात्रि के अन्धकार में घर घर में दीपक का प्रकाश कैसा शोभायमान होता है। उसी का वर्णन किसी ने बहुत अच्छा किया है :—

महद्भिरोघैस्तमसामभिद्रुतो भयेऽप्यसंमूढमतिर्मनुश्रितौ।
प्रदीपरूपेण गृहे गृहे स्थितो विखण्ड्य देहं बहुधेव भास्करः ॥७२॥

७२ भावार्थः—यद्यपि सूर्य अन्धकार के समूह से छिन्न भिन्न किया गया तथापि वह घबड़ाया नहीं, बल्कि उसने अपना अस्तित्व कायम रखनेकी दूसरी तरकीब निकाली। दिन में वह केवल एक था, अब वह अपने शरीर के बहुत से टुकड़े कर प्रदीप तथा लैम्प के वेश में घर घर में विराजमान है।

चन्द्रमाके बारे में किसी कवि ने बहुत ही अनोखी कल्पनाएं की हैं :—

लक्ष्मीक्रीड़ातड़ागो, रतिधवलगृहं, दर्पणो दिग्वधूनां,
पुष्पं श्यामालतायास्त्रिभुवनजयिनो मन्मथस्यातपत्रम्।
पिण्डीभूतं हरस्य स्मितममरसरित्पुण्डरीकं, मृगाङ्को,
ज्योत्स्नापीयूषवापी, जयति सितवृषस्तारकागोकुलस्य॥७३॥

७३ भावार्थ :—यह चन्द्रमा लक्ष्मीदेवी का क्रीडासर है, कामदेवकी स्त्री रति का सफेद घर है, दिशारूपी वधूटियों के मुख देखने का दर्पण है, रात्रि रूपी लता का सफेद फूल है, त्रिभुवन विजयी कामदेव का यह श्वेतछत्र है। अथवा महादेवजी ने अट्टहास किया है वही हास्य पिण्डीभूत होकर चन्द्रमा हो गया है। अथवा आकाश गंगा मन्दाकिनी में खिला हुआ यह कमल का फूल है। या चान्दनी रूपी अमृत का यह सरोवर है। अथवा तारारूपी गौओं के बीच में यह एक सफेद बैल है।

संध्याकाल के वर्णन में किसी कवि ने इस श्लोक में अच्छी अच्छी उपमाएं दी हैं :—

मलिनिन इव विद्या क्षीयते पङ्कजश्री,
गुणिन इव कुदेशे दैन्यमायान्ति भृङ्गाः।
कुनृपतिरिव लोकान् पीडयत्यन्धकारो
धनमिव कृपणानां व्यर्थतां याति चक्षुः॥ ७४॥

७४ भावार्थ—संध्या समय कमलों की शोभा वैसी ही क्षीण हो रही है जैसी कि दुर्व्यसन में पड़े हुए विद्यार्थियों की विद्या क्षीण हो जाती है। कमलों के मुंद जाने से भवरे वैसे ही दुर्गति को प्राप्त हो रहे हैं, जैसे किसी खराब देश में पहुंच कर गुणों की कदर न होने से कोई गुणी मनुष्य दुःख पाता है।

अन्धकार मनुष्यों को वैसे ही पीड़ा दे रहा है जैसे दुष्ट अत्याचारी राजा अपनी प्रजाको पीड़ा देता है। अन्धकार के कारण आंखें वैसे ही व्यर्थ हो रही हैं जैसे सूमका धन, जो न दिया जाता है न भोगा जाता है, व्यर्थ है।

इस श्लोकमें सन्ध्याका वर्णन करते हुए किसी कविने नाटक का सर्वांगपूर्ण रूपक बड़ी खूबीके साथ बांधा है :—

सन्ध्याशोणाम्बरजवनिका, कामिनोः प्रेमनाट्यं,
नान्दी भ्राम्यद्भ्रमरविरुतं, मारिषः कोऽपि कालः।
तारापुष्पांजलिमिव किरन्, सूचयन् पुष्पकेतो
र्नृत्यारम्भं, प्रविशति सुधादीधितिः सूत्रधारः ॥ ७५ ॥

७५ भावार्थ :—सन्ध्याकालीन लाल आकाश इस नाटकका पर्दा है, कामी पुरुष और स्त्रियोंका प्रेम इस नाटकका प्लाट (कथानक) है, इधर उधर उड़ते हुए भौरोंका भन्न भन्न शब्द इस नाटकका नान्दी पाठ है, कोई ऐसा अलौकिक संन्ध्याकाल जो है वही मारिष (सहायक सूत्रधार) है, और चन्द्रमा ही इस नाटकका सूत्रधार है, जो तारारूपी पुष्पोंको बिखेरता हुआ, और इस बातको सूचित करता हुआ कि अब कामदेवका नृत्य आरंभ होनेवाला है, आकाश रूपी स्टेज (रंगमंच) पर धीरे प्रवेश कर रहा है।

ऋतु वर्णन।

इस श्लोकमें ग्रीष्म ऋतुका बहुत प्राकृतिक वर्णन है :—

तप्ता मही विरहिणामिव चित्त वृत्ति—
स्तृष्णाध्वगेषु कृपणोष्विव वृद्धिमेति।

सूर्यः करैर्दहति दुर्वचनैः खलोनु
छाया सतीव न च मुंचति पादमूलम् ॥ ७६ ॥

७६ भावार्थ :—पृथ्वी वैसी ही तप रही है जिस तरहसे वियोगी प्रेमियोंका हृदय वियोगसे जला करता है। बटोहियोंमें प्यास वैसी ही बढ़ रही है, जिस तरहसे कृपण मनुष्योंमें धनकी तृष्णा दिन पर दिन बढ़ती आती है। सूर्य अपनी किरणोंसे जगत्‌को वैसी ही पीड़ा दे रहा है जैसे दुष्ट मनुष्य अपने वाग्बाणोंसे लोगोंको पीड़ा दिया करता है। छाया सती और पतिव्रता स्त्रीके समान वृक्षकी जड़को नहीं छोड़ती।

ग्रीष्म ऋतुकी दोपहरका वर्णन किसीने इस श्लोकमें अच्छा किया है :—

दुःसहतापभयादिव संप्रति मध्यस्थिते दिवसनाथे।
छायामिव वाञ्छन्ती छायापि गता तरुतलानि ॥७७॥

७७ भावार्थ :—दोपहरमें सूर्यके ठीक मध्य आकाशमें आने पर, असहनीय तापके भयसे, छाया भी छायाकी इच्छासे वृक्षके नीचे चली गई। दो पहरको बारह बजे छाया सिकुड़ती सिकुड़ती ठीक वृक्षके नीचे आजाती है, इसी बातको इस श्लोकमें कविने कितनी सुन्दरतासे कहा है।

इसी भावका विहारीका यह दोहा भी है :—

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन मन मांहि।

निरखि दुपहरी जेठकी, छांहौं चाहत छांहि ॥

इस श्लोकमें भी ग्रीष्म ऋतु की दोपहरका वर्णन अच्छा है:—

परपुरुषादिव सवितुः संप्रति भीताः कराग्रसंस्पर्शात्।
कुलवध्व इव सलज्जाः प्रविशन्ति गृहोदरं छायाः ॥ ७८ ॥

७८ भावार्थः—सूर्य की किरणें कहीं मुझे स्पर्श न करलें बस इसी डरसे गरमीमें छाया घरके भीतर घुसकर बैठी है। जैसे कोई लज्जाशीला कुलकामिनी परपुरुषके करस्पर्शसे डरती हुई घरके भीतर घुस जाती है।

वर्षा कालकी रातका वर्णन किसीने बहुत अच्छा किया है:—

क्षपा क्षामीकृत्य प्रसभमप हृत्याम्बु सरितां।
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम् ॥
क संप्रत्युष्णांशुर्गत इति तदन्वेषणपरां!
स्तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चरन्तीह जलदाः ॥ ७६ ॥

७६ भावार्थ.—रात्रिको दुर्बल और कृशित कर, नदियों के जलको बल पूर्वक अपहरण कर, समस्त पृथ्वीको तपा कर, और जितने वन और उपवन हैं उनको सुखा कर अत्याचारी और निर्दयी सूर्य अब कहां छिप कर बैठा है बस उसीको ढूंढ़-नें के लिये हाथमें बिजुली रूपी दीपक लेकर मेघ एक दिशासे दूसरी दिशामें घूम रहे हैं।

वर्षाकालका वर्णन इस श्लोकमें बहुत ही सुन्दर किसीने किया है:—

एवं वस्ते कलविंककण्ठरुचिरं कादम्बिनीकम्बलं
चर्चां पारयतीव दर्दुरकुलं कोलाहलैरुन्मदम् ॥

गन्धं मुंचति सिक्तलाजसदृशं वर्षेण दग्धा स्थली।
दुर्लक्ष्योऽपि विभाव्यते कमलिनीहासेन भासां निधिः ॥८०॥

८० भावार्थ—गोरैयाके कण्ठके समान काले मेघ आकाश मे छाये हुए हैं, मानों आकाश रूपी फर्श पर काला गलीचा बिछा दिया गया हो; मेढ़क लोग टर्टर लगाए हुए हैं, मानों वेदपाठी छात्र वेदपाठ कर रहे हों; ग्रीष्मतप्ता पृथ्वी वर्षाकी बून्दोंसे सिक्त होकर वैसीही सुगन्ध छोड़ रही है जैसी सुगन्ध धानके लावाके घीमें भूंजनेसे उठती है; यद्यपि सूर्य दृष्टिमें नहीं आता तब भी कमलोंके विकाशसे उसके अस्तित्वका अनुमान किया जा सकता है।

वर्षा कालकी रातका वर्णन इस श्लोकमें बहुतही भई सूझ का है :—

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो।
मुखं निशायामभिसारिकायाः॥
धारानिपातैः सह किं नु यान्त
श्चन्द्रोयमित्यार्त्ततरं ररास ॥८१॥

८१ भावार्थ—वर्षा कालकी अंधेरी रातमें अभिसारिका नायिका अपने यारके घर आ रही है। उसके मुखको बिजुली रूपी नेत्रोंसे देख बादलोंको भ्रम होता है कि निरन्तरकी धारापात में चन्द्रमा आकाशसे पृथिवी पर गिर गया क्या? हाय ग़ज़ब हुआ! इसी सोचमें भर वे बड़ी ज़ोरसे चिल्लाने लगते हैं। यह गरजनेका शब्द उन्हीं बादलोंका चौंक कर चिल्लाना है।

हेमन्त ऋतुके दिनोंके वर्णनमें किसीने बड़ी अच्छी उपमाएं दी हैं:—

लज्जा प्रौढ़मृगीदृशामिव, नवस्त्रीणां रतेच्छा इव।
स्वैरिण्या नियमा इव, स्मितरुचः कुल्यांगनानामिव॥
दम्पत्योः कलहा इव, प्राणयिता वारांगनानामिव।
प्रादुर्भूय तिरोभवन्ति सहसा हैमन्तिका वासराः॥८२॥

८२ भावार्थः—प्रौढ़ा स्त्रियोंकी लज्जाके समान, नवयुवतियोंकी सुरतेच्छाके समान, यथेच्छाचारिणी स्त्रियोंके शील और नियमके समान, कुलीन स्त्रियोंकी मुस्कुराहटके समान, पति और पत्नीके परस्पर प्रेम-कलहके समान तथा वेश्याओंकी प्रीतिके समान हेमन्त ऋतुमें दिन आते हैं और फिर शीघ्रही विलीन भी हो जाते हैं।

शरत्कालके वर्णनमें किसी कविने इस श्लोकमें भी अच्छी अच्छी उपमाएं दी हैं:—

वृद्धांगनेव विजहौ सरिदुच्छलत्वम्।
वेदान्तिनामिव मतं शुचि नीरमासीत्॥
चन्द्रप्रभा युवतिवक्त्रमिवाद्भुताभूत्।
ब्राह्मण्यदैन्यमिव केकिरुतं न रेजे॥८३॥

८३ भावार्थः—शरत् कालमें नदियोंका जोम वैसाही टूट गया जैसे बुढ़ापेमें स्त्रियोंका जोम टूट जाता है, जल वैसाही साफ हो गया जैसे वेदान्तियोंका सिद्धान्त स्वच्छ और विमल होता है, चन्द्रमाका प्रकाश वैसाही निर्मल और शोभा युक्त है जैसे सुन्दर युवतियोंका मुखारविन्द होता है और मोरोंका

किकियाना वैसाही कर्ण कटु हो रहा है जैसी ब्राह्मणोंकी दीन वाणी तथा शोकोद्गार कानोंको प्रिय नहीं लगता।

शिशिर ऋतुकी ठंढी हवा विरहिणी स्त्रियोंको कैसी दुःख दायी होती है और उससे उनको कितनी कामपीड़ा होती है इसीका वर्णन किसी कविने अच्छे ढंगसे किया है :—

शिशिरसीकरवाहिनि मारुते चरति शीतभयादिव सत्वरः।
मनसिजः प्रविवेश वियोगिनीहृदयमोहित शोक हुताशनम् ॥८४॥

८४ भावार्थ :—शिशरकालमें ठंडी हवा चलनेपर शीतसे बचनेके लिये कामदेवने वियोगिनी स्त्रियोंके हृदयोंमें, जिनमें विरहाग्नि धधक रही है, प्रवेश किया।

किसी कविने जाड़ेका बहुत ही प्राकृतिक वर्णन किया है:—
विभीषयति शीतल जल महिर्यपुष्मानिव
प्रलोभयति कामिनीस्तन इवास्तधूमानलः।
सुतातय इव स्विपो दिनमणेः सुखं कुर्वते
कुटुम्ब कटुवागिव व्यथयते तुषारानिलः। ८५

८५ भावार्थ :—ठंडा जल साक्षात् सर्पकी तरह डरावना मालूम पड़ता है। जिसमेंसे धुंआ नहीं उठता ऐसी आग कामिनीके स्तनके समान देखनेवालोंको अपनी ओर खींच रही है। सूरजका घाम पुत्रजन्मकी तरह सुख पहुंचा रहा है। ठंडी ठंडी हवा शरीरमें वैसी ही लगती है जैसी अपने कुटुम्ब-वालोंकी कड़ुई बातें हृदयमें लगती हैं।

जाड़ेका वर्णन करता हुआ कोई कवि किसी धनी मनुष्य या राजासे कहता है :—

शीतार्त्ता इव संकुचन्ति दिवसाः नैवाम्बरं शर्वरी
शीघ्रं मुंचति, पश्य देव ! हुतभुक्कोणं गतो भास्करः।
त्वं चानङ्ग हुताशभाजि हृदये सीमन्तिनीनां स्थितो
नास्माकं वसनं नवा युवतयो ब्रूहि क्व यामो वयम्॥ ८६

८६ भावार्थ :—हे राजन्! आजकल दिन भी सर्दीके मारे ठिठुर कर छोटे हो गये हैं, रात भी जाड़ेके मारे जल्दी अम्बर (आकाश अथवा कपड़ा या रज़ाई) को नहीं छोड़ती, सूर्य भी आग तापनेके लिये अग्निकोणको चला गया, आप भी उन कामिनियोंके हृदयमें सदा निवास करते हैं जिनका हृदय हमेशा कामाग्निसे जला करता है। हमारे पास न तो कपड़ा और न युवतियां हैं। बतलाइये ऐसे जाड़ेमें हम क्या करें।

बसन्त कालके वर्णनमें किसी कविने बड़ा अनोखा रूपक बांधा है :—

जगद्विजयरूपके पठति सूत्रधारे मधा—
वति प्रमदकोकिला कलकलच्छलान्मंगलम्।
दयं जवनिकां हरन् मृगदृशां मनोरंगत—
स्ततः प्रविशति स्वयं कुसुमसायको नायकः॥ ८७

८७ भावार्थ :—"जगद्विजय" नामके नाटकके प्रारंभमें बसन्तरूपी सूत्रधार जब मदमें मतवाली कोकिलाओंकी कूकरूपी नान्दीका पाठ कर चुका तब मृगनयनियोंके मन रूपी रंगमंच (स्टेज) से मानरूपी जवनिकाको हटाता हुआ कामदेव रूपी नायक प्रवेश करता है।

यश और राजस्तुति

किसी राजाकी तारीफ़में एक कवि कहता है :—

देव त्वद्यशसि प्रसर्पति जगल्लक्ष्मीसुधोर्वीश्रव—
श्चन्द्रैरावणकौस्तुभाः स्थितिमिरामन्यन्त दुग्धाम्बुधौ।
किन्त्वेकः पुनरस्ति दूषणकणो यत्रोपयाति भ्रमा—
त्कृष्णं श्रीः, शितिकण्ठमद्रितनया, नीलाम्बरं रोहिणी ॥८८॥

८८ भावार्थ :—हे राजन्, आपका यश जगत् में फैलते ही लक्ष्मी, सुधा, उर्वी: श्रवा, चन्द्रमा, ऐरावत हाथी, कौस्तुभमणि इत्यादि जितने पदार्थ समुद्र-मन्थन से निकले थे सब के सब फिर से अपना वास क्षीर समुद्र में समझने लगे। लेकिन एक बात ज़रा दोष की है,—वह यह कि समस्तवस्तु के श्वेत हो जानेसे लक्ष्मी भ्रमसे कृष्णके पास, पार्वतीजी शितिकण्ठ महादेवके पास, और रोहिणी नीलवस्त्रधारी बलदेवके पास नहीं जातीं, क्योंकि आपके यशके प्रतापसे कृष्णका शरीर, महादेवका कण्ठ और बलदेवका नीला वस्त्र सब का सब सफ़ेद हो गया। इसीसे लक्ष्मी इत्यादिको कृष्ण इत्यादिके बारेमें भ्रम हो रहा है।

किसी राजाकी तारीफ़में एक कवि कहता है :—

यथा यथा ते सुयशो विवर्द्धते सिता त्रिलोकीमिव कर्त्तुमुद्यतम्।
तथा तथा मे हृदयं विदूयते प्रियालकालीधवलत्वशङ्कया ॥८९॥

८९ भावार्थ :—राजन्, तीनों लोकोंको सफ़ेद करता हुआ आपका यश ज्यों ज्यों फैल रहा है त्यों त्यों मेरे हृदयमें शङ्का बढ़ती जाती है कि कहीं मेरी प्रियाकी अलकावली भी सफ़ेद न हो जाय। संस्कृत कवियोंने यशका वर्णन श्वेत किया है।

लक्ष्मी और सरस्वती ।

किसी राजाको आशीर्वाद देता हुआ एक कवि कहता है.—

हिमशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरत्सु ।
स्तनतपनवनाम्भोहर्म्यगोक्षीरपाने. ॥
सुखमनुभव राजन् ! शत्रवो यान्तु नाशं ।
दिवसकमललज्जाशर्वरीरेणुपङ्कैः ॥६०॥

६० भावार्थ —हे राजन् ! हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, तथा शरत् इन छहों ऋतुओंमें आप क्रमसे (१) स्त्रियों के स्तन (२) सूर्यका घाम, (३) वन तथा बाग (४) नदी तथा तालाबका जल, (५) ऊंचे ऊंचे महल तथा दुमहले, (६) और गौका दुग्धपान इनसे ऋतुओंके अनुसार सुख अनुभव करें । और आपके शत्रु यथाक्रम, (१) दिन, (२) कमल, (३) लज्जा, (४) रात, (५) धूल तथा (६) कीचड़के साथ साथ, ऋतुओं के अनुसार नाशको प्राप्त हों ।

किसी धनीके द्वारसे दुरदुराया गया कोई निष्किञ्चन सरस्वतीका भक्त कहता है —

"निद्राति, स्नाति, भुङ्क्ते, चलति, कचभरं शोषयत्यन्तरास्ते ।
दीव्यत्यक्षैर्न चायं गदितुमवसरो, भूय आयाहि याहि ॥"
इत्युद्दण्डैः प्रभूणामसहृदधिरलैर्वारितान् द्वारि दीना—
नस्मान् पश्याब्धिकन्ये ! सरसिरुहरुचामन्तरङ्गैरपाङ्गैः ॥६१॥

६१ भावार्थ.—"सरकार अभी सो रहे हैं, अब स्नान कर रहे हैं, अभी खा रहे हैं, अभी चेहलकदमी कर रहे हैं, अब बालोंको सुखा रहे हैं, इस वक्त जनानखानेमें तशरीफ रखते हैं, अभी

पासा खेल रहे हैं, यह समय बोलनेका नहीं है, अभी जाओ, फिर आना"—इस तरहसे वारवार उद्धत, तथा धनके मदमें मतवाले अमीरों के द्वार पर अधिकारी पुरुषोंसे रोके गये हम को भी, हे लक्ष्मी ! अपनी कृपाकटाक्षसे एक बार देख लो तो हम निहाल हो जायं।

मूर्खके पास लक्ष्मी क्यों आती है और विद्वानके पास क्यों नहीं आती, इस पर किसीने बहुत अच्छा कहा है:—

पद्मे ! मूढ जने ददासि द्रविणं विद्वत्सु किं मत्सरो ?
नाहं मत्सरिणी, न चापि चपला, नैवास्ति मूर्खे रता ॥
मूर्खेभ्यो द्रविणं ददामि नितरां तत्कारणं श्रूयताम्,
विद्वान्सर्वजनेषु पूजिततनुर्मूर्खस्य नान्या गतिः ॥१२॥

१२ भावार्थ.—"लक्ष्मी ! तुम मूर्खोंको धन देती हो, विद्वानों से तुम्हारा इतना क्यों द्वेष है ?" इसपर लक्ष्मी उत्तर देती है:— "न तो मैं किसीसे द्वेष करती हूं, न मैं चंचला हूं जैसा लोग मुझे समझते हैं, और न मूर्खों से मेरा कोई प्रेम है। मूर्खों को जो मैं धन देती हूं इसका कारण सुनो, विद्वान् पुरुष तो सब जगह पूजा जाता है, मूर्खको तो सिवा मेरे कोई गतिही नहीं है।, इसीसे मैं उन्हें धन दिया करती हूं। यदि मैं भी उन्हें छोड़ दूं तो उनका ठिकाना कहां लगे।"

लक्ष्मी चंचला है ऐसा लोग कहा करते हैं इस पर एक कवि कहता है :—

यद्वदन्ति चपलेत्यपवादं नैव दूषणमिदं कमलायाः।
दूषणं जलनिधेर्हि भवेत्तद्यत्पुराणपुरुषाय ददौ ताम् ॥१३॥

६३ भावार्थ :—लोग यह कहा करते हैं कि लक्ष्मी बड़ी चंचला है, एक जगह स्थिर हो कर नहीं रहती; आज एक के पास है तो कल दूसरे के पास, इसमें भला लक्ष्मीका क्या दोष ? दोष तो लक्ष्मी के पिता समुद्र का है, जिसने उसे एक पुराण पुरुष (वृद्धमनुष्य तथा विष्णु) से व्याह दिया। इसी भाव का रहीम का एक दोहा भी है :—

चपला यह न रहीम थिर सांच कहत सब लोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥

लक्ष्मी और सरस्वती का झगड़ा इस श्लोकमें किसीने बहुत अच्छा दिखलाया है :—

विद्वांसः कृतबुद्धयः सखि ! मम द्वारि स्थिताः नित्यशः।
श्रीमन्तोऽपि मया विना पशुसमा तस्मादहं श्रेयसी॥
श्रीवाग्देवतयोरमूनि वचनान्याकर्ण्य वेधाश्चिरा-
दूचे श्रेयतरे उभे यदि भवेदेको विवेको गुणः॥६४॥

६४ भावार्थः—लक्ष्मी कहती है:—"सखी सरस्वती, बड़े बड़े विद्वान् और बुद्धिमान् नित्य मेरे (धनियोंके) द्वारपर हाथ फैलाए खड़े रहते हैं।" इस पर सरस्वती उत्तर देती है :—"हां ठीक है, किन्तु धनी मनुष्य भी मेरे (सरस्वतीके) बिना निरे पशु हैं, इस लिये मैं ही बड़ी हूं।" लक्ष्मी और सरस्वती के इस झगड़ेको सुनकर ब्रह्मा बहुत देरतक सोचने के बाद बोले :—"दोनों ही अच्छी हैं यदि दोनोंमें विवेक हो तो, बिना विवेक के दोनों में से एक भी प्रशंसा के योग्य नहीं है।"

किसीके सामने हाथ फैलानेसे अपनी प्रतिष्ठाकी कितनी हानि होती है, इस पर एक कवि अच्छा कहता है :—

स्वार्थं धनानि धनिकात्प्रतिगृह्णतो यद्
आस्यं भजेन्मलिनतां किमिदं विचित्रम्।
गृह्णन् परार्थमपि वारिनिधेः पयोऽपि
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम् ॥ ६५ ॥

६५ भावार्थ :—किसी धनीसे अपने स्वार्थके लिये धन लेते हुए यदि मनुष्यका चेहरा मलिन हो जाय तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। मेघ तो समुद्रसे केवल जल और वह भी दूसरोंके लिये लेता है, और केवल इतने ही से वह पूरी तरहसे काला हो जाता है।

लक्ष्मी और हालाहल विषमें तुलना करता हुआ कोई कवि कहता है :—

हालाहलं नैव विषं, विषं रमा,
जनाः परं व्यत्ययमत्र मन्वते।
निपीय जागर्ति सुखेन तं शिवः
स्पृशन्निमां मुह्यति निद्रया हरिः ॥ ६६ ॥

६६ भावार्थ :—लोगोंका गलत ख़याल है कि हालाहल विष है। मैं तो यह समझता हूँ कि हालाहल विष नहीं है बल्कि लक्ष्मी विष है। क्योंकि उसे पीकर शिव सदा जागते रहते हैं, और इसके स्पर्शमात्रसे मुग्ध होकर विष्णु निद्रामें पड़े रहते हैं।

लक्ष्मी विद्वान् ब्राह्मणोंके पास क्यों नहीं आती इसका कारण किसी कविने निम्नलिखित श्लोकमें अच्छा दिया है :—

पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येन रोषा—
दावाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धारिता वैरिणी मे।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं
तस्मात्खिन्ना सदाहं द्विजकुलसदनं नाथ! नित्यं त्यजामि॥ ६७

६७ भावार्थ :—विष्णुने लक्ष्मीसे पूछा कि तुम ब्राह्मणोंसे क्यों घृणा करती हो? उनके पास क्यों नहीं जाती? इस पर लक्ष्मी उत्तर देती है :—"हे नाथ! अगस्त्य नामी एक ब्राह्मण था जिसने मेरे पिता समुद्रको उठाकर पी लिया। एक दूसरा ब्राह्मण भृगु नामका हुआ है जिसने मेरे पति विष्णु भगवान्को लातसे मारा। बहुत छोटी उमरसे ही ब्राह्मण लोग मेरी वैरिणी सरस्वतीकी उपासना करते हैं और सर्वदा उसे अपने मुखमें धारण करते हैं। बेलपत्रमें मेरा वास रहता है, उसी बेलपत्रको वे लोग प्रति दिन शिवजीकी पूजाके निमित्त तोड़ते हैं। इन्हीं सब बातोंसे खिन्न होकर मैं ब्राह्मणोंके यहां नहीं रहती।"

लक्ष्मी पानेसे लोग अक्लके अन्धे हो जाते हैं इस बातको कविने कैसे अच्छे ढंगसे नीचे लिखे हुए श्लोकमें कहा है :—

लक्ष्मि! क्षमस्व वचनीयमिदं दुरुक्त—
मन्धीभवन्ति पुरुषास्त्वदुपासनेन।
नो चेत्कथं कमलपत्रविशालनेत्रो
नारायणः स्वपिति पन्नग भोगतल्पे॥ ६८

६८ भावार्थ :—हे लक्ष्मी! तुम्हारी भक्ति करनेवाले पुरुष

अन्धे हो जाते हैं। यद्यपि इस कथनसे तुम्हारी निन्दा होती है पर है बात सच इससे कहना पड़ता है। इससे ऐसा कहनेके लिये क्षमा चाहता हू। यदि तुम्हारी उपासना करनेसे पुरुष अन्धे न होते तो कमलपत्रके समान बड़े बड़े नेत्रवाले विष्णु भगवान् भी, तुम्हारे साथ रहनेसे, क्यों शेषनागके शरीर पर सोते। तुम्हारे साथसे विष्णु भगवान् बड़ी बड़ी आंखवाले होकर भी अन्धे हैं, तभी तो शेषनाग पर सो रहे हैं।

आदर्श करुणरस।

एक मृगीको किसी व्याधाने फन्देमें फंसा लिया है। उसे सम्बोधन करके मृगी करुणाजनक शब्दोंमें कहती है :—

आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जमंगात्
मा मुंच ! वागुरिक ! याहि कुरु प्रसादम् ।
अद्यापि घासकवलग्रसनानभिज्ञो
मन्मार्गवीक्षणपरस्तनयो मदीयः ॥६६॥

भावार्थ—हे व्याधा ! स्तनोंको छोड़कर मेरे समस्त शरीरसे मांस लेकर मुझे छोड़ दे; इतनी कृपा मुझपर कर ! मेरा छोटा बच्चा अबतक घास खाना नहीं जानता। वह मेरा रास्ता देखता होगा कि मैं आऊं और वह मेरा दूध पिये। इसलिये मुझे छोड़ दे मैं जाऊं। कितना करुणापूर्ण और हृदयाकर्षक भाव है।

आदर्श वीररस ।

यह श्लोक वीररसका बहुत अच्छा उदाहरण है। इसके भाव और शब्द दोनों बहुत अच्छे हैं। इस श्लोकमें एक खूबी यह है कि रसके अनुकूल ही शब्दका प्रयोग इसमें किया गया है। इसके एक एक पदमें वीर रस टपक रहा है। यह श्लोक जगन्नाथ पण्डितराजके भामिनी-विलाससे लिया गया है —

धीरध्वनिभिरलते नीरद ! मे मासिको गर्भः ।
उन्मदवारणबुद्ध्या मध्येजठरं समुच्छलति ॥१००॥

१०० भावार्थ—रे बादल ! मत गरज, मत गरज । इन अपने गभीर शब्दोंको मत कर ! मेरे एक महीनेका गर्भ है। वह यह समझकर कि कोई मतवाला हाथी चिंघाड रहा है, मेरे पेटमें इसलिये उछल रहा है कि बाहर निकल कर इसे पछाड़ें।

आदर्श कृपण ।

किसी अर्थ पिशाच कृपणके जीवनका चित्र इस श्लोकमें अच्छा खींचा गया है —

जातिर्यातु रसातलं, गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतां,-
च्छीलं शैलतटात्पतत्वभिजन सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं,
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥ १०१ ॥

१०१ भावार्थ —"जाति रसातलको चली जाय तो चली जाय हमें कुछ परवाह नहीं है ! जितने गुण हैं वे सब पातालसे भी नीचे चले जायं कोई चिन्ता नहीं है ! शील और चरित्र पहाड

पर से गिरें और चकना चूर हो जायं, हमें खुशी से मंजूर है। कुटुम्ब का कुटुम्ब आग में जल मरे, अच्छी बात है। धीरता, जो हमारी शत्रु है, उस पर ईश्वर करें वज्रपात हो। हमें तो केवल धन चाहिये, जिसके बिना ये समस्त गुण तिनके के समान हैं।"

आदर्श दरिद्र ।

इस श्लोक में एक दरिद्र कुटुम्ब का चित्र अच्छा खींचा गया है :—

> वृद्धोऽन्धः पतिरेषमंचकगतः, स्थूणावशेषं गृहं
> कालोऽभ्यर्णजलागमः, कुशलिनी वत्सस्य वार्त्तापि नो।
> यत्नात्संचिततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला,
> दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति ॥ १०२ ॥

१०२ भावार्थ :—पति वृद्ध, अन्धा, तथा रोगी, खाट से रहा है, घर सब ओर से जीर्ण हो रहा है केवल एक ठूंठ मात्र बच गया है; बर्सात भी अब आरंभ होनेवाली है; लड़का परदेश गया है उसकी भी कोई खबर नहीं मिली; बड़े यत्नसे एक एक बून्द करके घड़े में तेल जमा किया गया था हाय वह भी टूट गया! लड़केकी बहू गर्भवती और हंड़िया से पेट निकाले है! यह सब देखके घर की पुरखिन सास बड़े ज़ोरसे रो रही है।

दुर्जन और सज्जन।

किसी छिद्रान्वेषी समालोचक से सताया गया एक कवि कहता है :—

अतिरमणीये काव्येऽपि पिशुनो दूषणमन्वेषयति,
अतिरमणीये वपुषि व्रणमिव मक्षिकानिकरः ॥ १०३ ॥

१०३ भावार्थ :—चाहे काव्य या ग्रन्थ कितना ही उत्तम और निर्दोष क्यों न हो किन्तु खल मनुष्य उसमें केवल दोषही ढूंढ़ेगा। जैसे कि शरीर चाहे कितनाही सुन्दर क्यों न हो किन्तु उसे छोड़ कर मक्खियां सिर्फ घाव या फोड़े पर बैठेंगी, अन्यत्र नहीं।

इसी भाव का एक दूसरा श्लोक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की कृपा से मुझे प्राप्त हुआ है। उसे नीचे लिखते हैं :—

कर्णामृतं काव्यरसं विहाय दोषेषु यत्नः सुमहान् खलस्य,
अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः क्रमेलकः कण्टक जालमेव ॥ १०४ ॥

१०४ भावार्थ :—दुष्ट मनुष्य अमृतके समान मधुर काव्यमें गुण को छोड़ कर केवल दोष ढूंढ़ने का यत्न करता है। जैसे ऊंट किसी सुन्दर उपवन में प्रवेश कर के केवल कंटीले वृक्ष और झाड़ झंखाड़ की तलाश करने लगता है।

कटुवादियों के वाग्बाणों से बेधा गया कोई हालाहल विष को संबोधन करके कहता है :—

अहमेव गुरुः सुदारुणानामिति हालाहल ! तात ! मास्मदृप्यः ।
ननु सन्ति भवादृशानि भूयो भुवनेऽस्मिन् वचनानि दुर्जनानाम्
॥ १०५ ॥

१०५ भावार्थ :—हे हालाहल! मत घमण्ड करो कि हम्हीं जितने कटु और पीड़ा देने वाले पदार्थ हैं सबोंमें श्रेष्ठ हैं, हमारे मुकाबिले का कोई नहीं है। अरे तुम्हें मालूम नहीं है कि तुम्हारे समान इस जगत् में दुष्ट पुरुषोंके वचन भी हैं, जिनके लगते ही मनुष्य एक बार प्राण रहते भी निर्जीव हो जाता है। इसी भावको एक उर्दू शेर भी है :—

छुरी का, तीर का, तलवार का तो घाव भरा।
लगा जो जख्म ज़बां का, रहा हमेशा हरा॥

खलोंके वाग्बाणोंसे छेदा गया कोई विषको संबोधन करके कहता है :—

नन्वाश्रयस्थितिरियं तव कालकूट!
केनोत्तरोत्तरविशिष्टपदोपदिष्टा।
प्रागर्णवस्य हृदये, वृषलक्ष्मणोऽथ
कण्ठेऽधुना वससि वाचि पुनःखलानाम्॥ १०६॥

१०६ भावार्थ :—हे कालकूट! एक दूसरेके उपरान्त उत्तम से उत्तम अपना आश्रय स्थान चुननेकी शिक्षा तुमने किससे पाई है। पहले तुम समुद्रके भीतर रहते थे, फिर शिव के कण्ठ में बसने लगे, और आज कल खलोंकी वाणीमें रहते हो।

इस कलिकाल में सज्जन क्यों दुःख पाते हैं इसका कारण देते हुए किसीने अच्छा कहा है :—

"लोको मद्युगजन्मा, कृतकृतकर्मा, न मद्धर्मा,"
इति हेतोरिव कलिना बलिना संपीड्यते साधुः॥ १०७॥

१०७ भावार्थ :—"साधु पुरुष पैदा तो हुए हैं हमारे काल में

और काम करते हैं सत्ययुग का, मेरे युग के अनुसार बिलकुल आचरण नहीं करते।" इसी कारण से गुस्सेमें आकर महा बली कलि साधु सज्जन पुरुषोंको सता रहा है।

लोग कहा करते हैं कि खलोंका हृदय कैसा कठोर होता है पर यह ठीक नहीं है। खलोंका हृदय नहीं बल्कि सज्जनोंका हृदय कठोर है। इसी पर एक कवि कहता है:—

> हृदयानि सतामेव कठिनानीति मे मतिः।
> खलवाग्विशिखैस्तीक्ष्णैर्भिन्द्यते न मनाग्यतः॥ १०८॥

१०८ भावार्थ:—मेरा तो यह विचार है कि सज्जनों ही का हृदय कठोर होता है। यदि ऐसा न होता तो वह खलोंके वाग्बाणोंसे क्यों नहीं छिद जाता। छिदना तो दूर रहा उसमें रेखामात्र भी नहीं लगती।

फुटकर श्लोक।

इस श्लोक में एक मसखरे तथा एक बुढ़िया की मज़ाक भरी बातें हैं:—

> अधः पश्यसि किं वृद्धे! पतितं तव किं भुवि।
> रेरे मूढ न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम्॥ १०९॥

१०९ भावार्थ:—हे वृद्धे! कमर झुकाए हुए तू नीचे क्या देख रही है? क्या ज़मीन पर कुछ गिर पड़ा है, जिसे ढूंढ रही है? इस पर बुढ़िया भी चुटकुले भरा जवाब देती है:—रे मूर्ख, क्या तू नहीं जानता कि मेरा जवानीरूपी मोती गिर पड़ा है

उसी को तलाश कर रही है। इसी भावका एक फ़ारसी का शेर भी है :—

चरा ख़म् कर्दा मी गश्तन्द पीराने जहां सायव।
मगर दर ख़ाक मी जूयन्द ऐय्यामे जवानीरा॥

धनहीन मनुष्योंके ऊंचे ऊंचे हौसले बिना धन के किस तरह तरह से पस्त हो जाते हैं इसकी उपमा कविने बहुत अच्छी दी है। उपमा यद्यपि अश्लील है तथापि बहुत ही सार्थक और सानुकूल है :—

उत्थाय हृदि लीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः।
बालवैधव्यदग्धानां कुलस्त्रीणां कुचा इव॥ ११०॥

११० भावार्थ :—दरिद्रोंके हौसले हृदयमें उसी तरह उठते हैं और विलीन हो जाते हैं, जिस तरहसे कि उच्चकुल की बाल-विधवाओं के कुच उठते हैं और फिर व्यर्थ होकर विलीन हो जाते हैं।

किसी ने इन्द्रियदमन पर अच्छा कहा है :—

नासौ जयी जिता येन नक्रव्यालमृगाधिपाः।
जितं तेनैव येनेह दान्तो मारस्त्रिलोकजित्॥ १११॥

१११ भावार्थ :—असल में वह विजयी नहीं है जिसने घड़ि-याल, सर्प, अथवा सिंह पर विजय पा ली है। सच्चा विजयी तो वही है जिसने तीनों लोकोंके विजय करनेवाले कामदेव को अपने काबूमें कर लिया है।

इसी भाव का एक उर्दू का शेर भी है :—

नेहंगो अज़दहाओ शेर नर मारा तो क्या मारा।
बड़े मूज़ीको मारा नफ्स अम्माराको गर मारा॥

किसी कवि ने कामदेव की चोर से उपमा देते हुए, कहा है :—

प्रज्ञा विनाशयत्यादौ प्रविष्टो हृदि मन्मथः।
दक्षो गेहं समायाति दीपं निर्वाप्य तस्करः॥ ११२॥

११२ भावार्थ :—जब कामदेव हृदयमें प्रवेश करने लगता है तो पहले बुद्धि को हर लेता है। ठीक है चोर जब घर में घुसने लगता है तो पहले दिये को बुझा देता है। इसी भावकी एक फारसीको शेर भी है :—

इश्क चू दरसीना आमद अक्लरा अव्वल बबुर्द।
दुज़्दे दाना चूं कुनद अव्वल चिरागे खानरा॥

अपने मन को संबोधन करके कोई कहता है :—

मनः कुत्रोद्योगः सपदि यद मे गम्यपदवी
नरे वा नार्यां वा गमनमुभयत्राप्यनुचितम्।
यतस्ते क्लीवत्वं सकृदपि गतो हास्यपदवीं
जनस्तोमे मागास्त्वमनुसर हि ब्रह्मपदवीम्॥ ११३॥

११३ भावार्थ :—मन! तुम्हारा क्या विचार है? जरा बतलाओ तो कहां चले? किसी पुरुष के पास जाना चाहते हो अथवा स्त्रीके? दोनों में से एक के प्रति भी जाना तुम्हारे लिये अनुचित है। क्योंकि तुम नपुंसक हो और वहां हसे जाओगे। इसलिये तुम मनुष्योंके पास न जाकर "ब्रह्म" के पास जाओ।

तुम्हारा उसका जोड़ है, तुम भी—नपुंसकलिंग हो और वह भी नपुंसकलिंग है। इसलिये तुम्हारी उसकी पट जायगी।

एक मनुष्य ने किसी वेदान्ती से पूछा कि तुम सन्ध्या क्यों नहीं करते। इस पर वह जवाब देता है:—

मृता मोहमयी माता जातो ज्ञानमयः सुतः।
सूतकं वर्त्तते नित्यं कथं सन्ध्यामुपास्महे ॥ ११४ ॥

११४ भावार्थ:—मोहरूपी माता मर गई है, और ज्ञानरूपी पुत्र पैदा हुआ है। रोज तो हमें सूतक लगा रहता है, सन्ध्या किस तरहसे करें? अर्थात् जब तक मोहरूपी अन्धकारमें मनुष्य पड़ा हुआ है, जब तक उसे ज्ञानका प्रकाश नहीं मिलता तभी तक वह सन्ध्या इत्यादि के फेरमें ,पड़ा रहता है। ज्ञान की ज्योति मिलनेपर वह सन्ध्या इत्यादि से परे हो जाता है।

जाते (चक्की) की घरर घरर आवाज सुन कर एक कवि कहता है:—

रे रे घरट्ट! मा रोदीः कंकं न भ्रामयन्त्यमूः।
कटाक्षक्षेपणादेव कराकृष्टस्य का कथा ॥ ११५ ॥

११५ भावार्थ:—हे घरट्ट (जांते) तुम क्यों रो रहे हो। अरे ये स्त्रियां किस किस को सिर्फ अपने कटाक्ष मात्र से नहीं घुमातीं। और फिर तुम्हें तो अपने हाथोंसे चक्कर खिला रही हैं। तुम्हारा क्या कहना है।

वस्त्रसे ही प्रतिष्ठा होती है, विना वस्त्रके कोई बात भी नहीं पूछता। इसपर एक कविने अच्छा कहा है!—

वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः
वासोविहीनं विजहाति लक्ष्मीः
पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां
दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः ॥ ११६ ॥

११६ भावार्थः—वस्त्रही प्रतिष्ठा–का मूल कारण है, बिना वस्त्रवालेको लक्ष्मी बात भी नहीं पूछती। देखिये समुद्रने विष्णुको पीताम्बर इत्यादि उत्तम वस्त्र धारण किये हुए देखकर अपनी लड़की लक्ष्मी उन्हें दी और महादेवको दिगम्बर (नग्न) देख कर उन्हें केवल विष दिया। इसी भावका एक श्लोक मुझे पण्डित महावीर प्रसादजी द्विवेदीसे प्राप्त हुआ है जिसे मैं नीचे लिखता हूं:—

अक्षराणि परीक्ष्यन्तामम्बराडम्बरेण किम्।
दिगम्बरो महादेवः सर्वज्ञः किन्न जायते ॥

इस असार संसारमें यदि कुछ सार है तो यह ससुरका घर है। इसको किसीने बड़े अच्छे ढङ्गसे कहा है:—

असारे खलु संसारे सारं श्वशुर मन्दिरम्।
हरो हिमालये शेते विष्णुः शेते महोदधौ ॥११७॥

११७ भावार्थ:—इस असार संसारमें सार केवल ससुरार है।

यदि यह बात न होती तो महादेवजी सब स्थानको छोड़कर अपने ससुरके घर हिमालयमें क्यों वास करते और विष्णु भगवान और सब स्थानको त्यागकर अपने श्वशुरपुर समुद्रमें

लक्ष्मीजी कमलमें, महादेवजी हिमालयमें, विष्णु भगवान् क्षीर समुद्रमें क्यों सोते हैं—इसपर किसी कविकी अनोखी सूझ है :—

कमले कमला शेते, हरः शेते हिमालये।
हरिः क्षीरोदधौ शेते, मन्ये मत्कुणशंकया ॥११८॥

भावार्थः—मैं समझता हूं खटमलके डरके मारे लक्ष्मी कमलमें सोती हैं, महादेवजी हिमालय पर सोते हैं और विष्णु भगवान् क्षीर समुद्रमें शयन करते हैं।

कविता कैसी होनी चाहिये इसपर किसी कविने बड़ा अच्छा कहा है :—

कूर्पासकेनार्धतिरोहितौ कुचौ
रम्यौ रमण्या. कविताक्षराणि च।
अर्द्धं निगूढानि सुशोभितान्यलं
नात्यन्तगूढानि न वा स्फुटान्यपि ॥११९॥

११९ भावार्थ.—चोलीसे आधे ढके हुए कामिनीके कुच और कविताके अक्षर तभी शोभा देते हैं जब वे कुछ छिपे और कुछ खुले रहते हैं। बिलकुल मुंदे अथवा बिलकुल खुले कुच और कविताके शब्द शोभा नहीं देते। इसी श्लोकका किसी हिन्दीके कविने अच्छा अनुवाद इस दोहेमें किया है :—

कवि आखर अरु तिय सुकुच अध उघरे सुख देत।
अधिक ढकेहू सुखद नहिं उघरे महा अहेत ॥

जगन्नाथजीकी मूर्त्ति काठकी क्यों है इसपर किसी कविकी बड़ी अनोखी सूझ है :—

एका भार्या प्रकृतिमुखरा, चंचला च द्वितीया,
पुत्रस्त्वेको भुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः ।
शेषः शय्या, शयनमुदधौ, वाहनं पन्नगारिः,
स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः ॥१२०॥

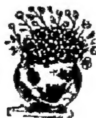
१२० भावार्थः—विष्णुकी एक स्त्री सरस्वती है जो स्वभाव हीसे बड़ी वाचाल है—दिनभर बक बक किया करती है । दूसरी स्त्री लक्ष्मी है जो महा चंचला है—एक जगह स्थिर होकर नहीं रहती । कामदेव नामक एक पुत्र है जो अपने वशमें नहीं है—संसारको विजय करनेमें लगा हुआ है । सोते किसपर हैं ? शेषनाग पर । रहनेका स्थान कहां है ? समुद्रमें । वाहन क्या है ? सर्पोंका शत्रु गरुड़ । अपने घरका यह सब चरित्र देख देखके विष्णु भगवान् काठके हो गये । वही जगन्नाथजी हैं ।



शुद्धिपत्र.

श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
१३	शान्ति	शान्तिं
१६	क्रुधामहो	क्रुधमहो
१८	त्वदेकंमनसः	त्वदेकमनसः
२१	भूतनिवहाः	भूतनिवहः
पेज १२ अन्तिम लाइन	आँगन	अँगन
पेज १५ लाइन १०	अणु दिणमण रण कम्मा	अणुदिणमणरण-कम्मा
पेज १६ लाइन ५	"जाहुनह"	जाहुन
पेज १६ लाइन १८	पौ हिय छोड़ है	पौमें हियमें होड़ है
श्लोक ३२	वाला	बाला
,, ४२	तोयांजलि	तोयांजलिः
,, ४३	स्मित	स्मितं
,, ,,	गृह	गृहं
,, ,,	विगतस्तन्व्या	विगतस्तन्व्या
,, ४४	द्यतिमयवपुः	द्युतिमयवपुः
,, ४५	अन्यजीवप्रमाहन्त !	अन्यजीवप्रमां हन्त !
पेज ३१ लाइन १७	रही है	रहा है

श्लोक ६७	पत्र	यत्र
पेज ४० लाइन ६	शशांक	शश
श्लोक ७३	सितवृप	सितवृप
,, ७६	संप्रत्युष्णाशुगंत	संप्रत्युष्णाशुगंत
,, ८१	तदन्वेषणपरा !	तदन्वेषणपरा-
,, ८३	युवतिवक्र	युवतिवक्त्र
,, ८४	वियोगिनीहृदयमोहित शोक हुताशनम्	वियोगिनीहृदयमाहित शोकहुताशनम्
,, ८५	शीतल	शीतलं
,, ६२	श्रुयताम्	श्रूयताम्
,, १०१	सन्दहाता	सन्दह्यता
,, १०४	कण्ठक जालमेव	कण्टकजालमेव
,, १०५	सुदारुणानांमिति	सुदारुणानामिति
पेज ६२ लाइन २	नफ़स	नफ़्स



हिन्दीकी उपयोगी पुस्तकें

सप्तसरोज—हिन्दीके सर्व श्रेष्ठ उपन्यास सेवासदनके लेखक श्रीमान् प्रेमचन्द जीकी रचना। इसमें सात अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद गल्पें हैं। सबके पढ़ने योग्य हैं। भाषा सरल और मधुर है। अनेक भाषाके विद्वानोंने इस पुस्तककी प्रशंसा की है। कवरिंग बहुत ही भावमय सुन्दर सचित्र है। कागज़ छपाई आला दर्जेकी। मूल्य केवल ॥) आना।

कर्मवीर गान्धीके महत्वपूर्ण लेख और व्याख्यान

इसमेंगान्धीजीके ७० लेख और व्याख्यान हैं। उनका कोई खास लेख या व्याख्यान छूटने नहीं पाया है। गान्धीजीके सिद्धान्त समझ कर अपने जीवनको उच्च बनानेके लिए यह एक ही पुस्तक है। इसे पढ़कर मन पवित्र हो जाता है और हृदयमें सन्तोष उत्पन्न होता है। सरस्वतीने इस पुस्तककी बहुत तारीफ की थी। कागज़ और छपाई बढ़िया। मूल्य केवल १।) उपहार देने लायक बढ़िया रेश्मी जिल्द १॥।)

महात्मा शेखसादी—लेखक श्रीमान प्रेमचन्दजी। जगत्प्रसिद्ध महापुरुष शेखसादीका मनोरंजक और उपदेश प्रद जीवन चरित्र, उनका अनूठा भ्रमण वृत्तान्त, उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ गुलिस्तां और बोस्तांकी उदाहरणों सहित आलोचना। सादीकी ऐसी अच्छी अच्छी कहावतें और नीति कथायें हैं कि पढ़कर सदा स्मरण रखने की इच्छा होती है। दाम ।≈)

ऐतिहासिक लेख संग्रह—लेखक श्रीयुक्त रामकु गोयनका। इसमें इतिहास सम्बन्धी ६ निबन्ध हैं। इन लेख बहुत सी उपयोगी बातें हैं। सरस्वती माडर्न रिव्यू आदि पत्रिकाओंने बहुत तारीफ की है। निबन्ध प्रेमियोंके काम चीज़ है। पुस्तकमें कई चित्र हैं। दाम ।≶)

नेत्रोन्मीलन नाटक—हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक मि बन्धुओं की अनूठी रचना। इस नाटकमें पुलिसके हथक और अत्याचारोंका सच्चा वर्णन है। इसमें दिखाया गय कि वकील मुकद्दमे कैसे चलाते, झूठे गवाह कैसे गढ़ते दिन दहाड़े न्यायकी आंखोंमें कैसे धूल झोंकते हैं और कि प्रकार एक झूठा मुकद्दमा बड़ेसे बड़े न्यायालयको भी धोख सकता है। इसमें उर्दू, गंवारी तथा अन्य कितनी ही भाषाअ मजेदार नमूने मिलेंगे। मूल्य केवल ।≶)

परीक्षा गुरु--लेखक लाला श्रीनिवासदास। हिन्द उपन्यासोंमें बेजोड़ शिक्षाप्रद उपन्यास है। इसे पढ़कर आ संसारमें ठगाता नहीं और दुराचारसे बचा रहता है। पन्ने की मोटी पुस्तक दाम सिर्फ ॥।)

रणधीर प्रेम-मोहिनी नाटक—हिन्दीमें जो अच्छे स्वतन्त्र नाटक हैं उनमें इसकी गणना की जाती है। इ आपको प्रेम रसकी चाशनी भी चखनेको मिलेगी। मूल्य ॥)

मिलनेका पता— *हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,*

१२६, हरिसन रोड, कलकत्त